RNI No- 65373/94

मूल्य रु. 70

अंक 31, अप्रैल 2018 - जून 2020

चन्द्रताल

कुस 22

गाहर/बुनन का हल्डा व कुंस 30

श्रिनमो खदा 51

स्वंगला एरतोग

लाहुल स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु सोसाईटी रजि०

उद्देश्य

- सांस्कृतिक विरासत को संजोना व संकलित करना व उन्हें प्रकाश में लाना, पुर्नजीवित करना।
- लोक विधाओं को चिन्हित करना जो लुप्त होने के कगार पर हैं।
- साहित्यिक रुचियों का विकास व सृजन के प्रति रुझान पैदा करना।
- सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक मंच प्रदान करना जहां विचारों का सम्प्रेषण एवं जन प्रतिक्रिया का आकलन संभव हो।

151/1 रामशिला, अखाड़ा बाज़ार, कुल्लू, हि०प्र० 175101

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित। संपादक, डॉ. छिमे शाशनी।

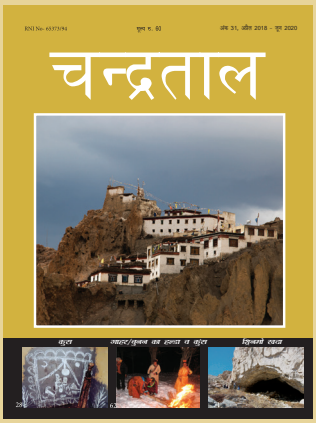

आवरण : डंखर (स्पीति)
छायाचित्र : मनालसू एडवेंचर

चन्द्रताल

अंक 31, अप्रैल 2018 - जून 2020

RNI No- 65373/94

इस अंक में:

संपादकीय		4
पाठकीय		5
कविताएं :		
हां साहब सुंदर तो है/गलती सरकार की नहीं है	: ईशान मरबल	6
एक बच्ची थी	: सुनीता कटोच	7
सन् उन्यासी का दर्द	: टशी अंगरूप	8
एक लाहुली की ज़िंदगी	: राजेश कटोच	8
लौटकर तुम्हारे गांव	: शमशेर सिंह संगला	9
लोकगीत		
गीत	: सरला चम्बयाल	9
कसौटी	: बलदेव घरसंगी	10
कहानी		
दिन में अंधेरा	: शेर सिंह	12
क्षेत्रीय दृष्टि		
दरियादिली और तंगदिली के सितम	: सतीश लोप्पा	17
लोकगाथा		
चाढ़ा बामन कन्या का विवाह	: के० अंगरूप लाहुली	18
लोक संस्कृति		
लाहुल में अंतिम पुईं के त्यौहार का विवरण	: तोबदन	22
कूंह, कुस या फागली	: रणवीर सिंह शाशनी	24
गाहर/बुनन का हल्डा व कुंस उत्सव	: वङचुग शास्त्री	32
फो-बर-दो-चोग : आमशय पर पत्थर तोड़ना	: मोहन लाल रेलिङ्पा	34
इतिहास		
लाहुल-स्पीति में बौद्ध धर्म का इतिहास	: विक्रम सिंह शाशनी	35
पर्यटन		
लाहुल में पर्यटन की दस्तक	: विक्रम कटोच	38
देव भूमि हिमाचल में जंजेहली घाटी में ट्रेकिंग	: आशा गुप्ता	41
धर्म		
कुल्लू में बौद्ध धर्म की स्थिति	: मौलू राम ठाकुर	44
श्रद्धांजलि	:	
भाषाविद-संस्कृति के पुरोधा थे ठाकुर मौलू राम	: डॉ० सूरत ठाकुर	47
हिमाचल के प्रतिभाशाली साहित्यकार का निधन	: छेरिङ दोर्जे	50
स्वास्थ्य		
जीवन शैली की बीमारियां	: डॉ० जे० पी० नारायण	51
पुरातत्व		
स्पीति घाटी की गुफा - श्रिनमो खदा	: विजय बौद्ध	53
भाषा-लिपि		
लाहुली बोलियों में लिपि की समस्या और समाधान	: सतीश लोप्पा	55
साक्षात्कार (किशन लाल राणा)	: सुनीता कटोच	58
समीक्षा		
आयोजन और चंद पुस्तकें	: अगः छेरिङ	60
आयोजन		
चन्द्रभागा फ्लेवर्स-घुरे गायन एवं कविता पाठ	: सुनीता कटोच	64
चार्ली हेब्दोऊ वरका	:	66

संस्थापक :
स्वंगला एरतोग,
लाहुल स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी रजि० संख्या ल स 42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1860

संपादक :
डॉ. छिमे शाशनी

उप संपादक :
बलदेव कृष्ण घरसंगी

प्रकाशक :
सतीश कुमार

डिज़ाईन/ले आऊट :
किशन बोक्टपा

संपर्क :
उप संपादक,
151/1 रामशिला,
अखाड़ा बाज़ार, कुल्लू, हि०प्र० 175101
9816019157 / 9459774779
editor.chandrataal@gmail.com

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित। संपादक, डॉ. छिमे शाशनी।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक।

चन्द्रताल सहयोग राशि :

एक प्रति - रु. 70

सम्पादकीय

संसार के कोलाहल से दूर तुषारमण्डित गगनचुम्बी पर्वत शृंखलाओं के मध्य अवस्थित लाहुल-स्पीति अपनी सांस्कृतिक तथा भौगोलिक स्थिति और परम्पराओं के कारण अनोखापन लिए हुए है। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों बाद इस घाटी में जहां शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ है, वहीं आर्थिक क्षेत्र में सन्तोषजनक प्रगति हुई है। फलतः सामाजिक क्षेत्र में भी तेज़ी से बदलाव आया है, साथ ही प्रगति ने हमारी संस्कृति और परम्पराओं को भी प्रभावित किया है। जिस से हमारी प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं का क्षरण हो रहा है। यद्यपि समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन शाश्वत प्रक्रिया है, शायद ही कोई ऐसा समाज हो, जो इस परिवर्तन से अछूता रहा हो; स्वाभाविक है लाहुल भी इससे अछूता नहीं है। लेकिन विडम्बना यह है कि आज अयातित परम्पराओं की चमक में चुंधियायी हमारी आंखें अपनी श्रेष्ठ जीवन्त परम्पराओं को नज़र अन्दाज़ कर रही हैं। आज विकास के नाम पर लोक संस्कृति को विस्थापित कर बाह्य संस्कृति को अपनाने की होड़ लगी है, जिस से पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्य धराशायी होते जा रहे हैं। अपनी संस्कृति और परम्पराओं के विरासत को बचाए रखने की चर्चा और चिन्ता अक्सर गोष्ठियों में होती है और इसे बचाए रखने के लिए सामूहिक प्रयास की अनिवार्यता भी सभी अनुभव करते हैं। अपने जड़ों की ओर लौटने के बारे सोचना- विचारना स्वाभाविक है और धरोहर को संरक्षित करने की भावना भी सराहनीय है। लेकिन जड़ों की ओर लौटने की बात कहना ही नहीं, बल्कि संस्कृति और जीवन्त परम्पराओं को संरक्षित करने के लिए कदम उठाना सब से ज़रूरी है। संस्कृति हमारी अस्मिता का मूल है, इस को संरक्षित करना हमारा दायित्व ही नहीं धर्म भी है।

वर्तमान में लाहुल में सामाजिक परिवर्तन का मूल्यांकन किया जाए तो इस घाटी में परिवर्तन स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। पूर्व में हमारा ग्रामीण समाज का स्वरूप सामुदायिक एवं सांगठनिक था, अन्योन्याश्रिता की भावना थी, जैसे समाज में जो भी कार्य, चाहे धार्मिक क्रिया कलाप हो, ब्याह-शादी या अन्य संस्कार, गांवों में ज़रूरत की चीज़ों का आदान-प्रदान होता था। जिस के मूल में बर्चस्वता नहीं, एकजुटता और आत्मीयता का भाव रहता था, लेकिन वह भाव आज समाप्त प्राय है। विरासत का संरक्षण, जीवन्त परम्पराओं का पुनर्प्रतिष्ठापन, समाज में एकात्मकता तथा सौहार्द की भावना को पुनर्प्रजीवित कैसे किया जाए इस पर चिन्तन-मनन हो रहा है। सभी समझते हैं कि इस का निराकरण केवल सार्वजनिक भावना से ही सम्भव हो सकता है। अन्त में महान विचारक अब्राहम लिंकन का कथन उद्घृत है- ''सार्वजनिक भावना ही सब कुछ है। सार्वजनिक भावना के साथ, कुछ भी विफल नहीं हो सकता और इसके बिना, कुछ भी सफल नहीं हो सकता।'' हम जब समाज में अयातित परम्पराओं और अमितव्ययता को रोकना चाहते हैं तो एकजुट हो कर उसे रोक भी सकते हैं, बदलाव भी ला सकते हैं।

सम्पादक

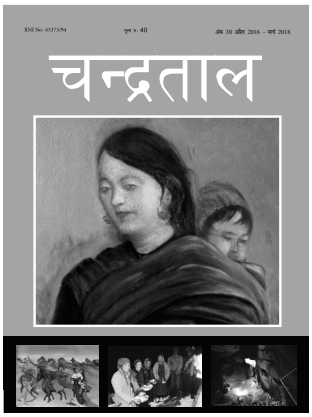

लगभग दो वर्ष के पश्चात् चन्द्रताल का 30 वां अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका का सुन्दर कवर, चित्र, लेख तथा कहानी के अच्छे समन्वय के लिए सम्पादक वर्ग बधाई के पात्र हैं। वैसे तो सारी रचनाएं रोचक हैं परन्तु सतीश कुमार लोप्पा जी का लेख 'महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति का अधिकार' बहुत ही प्रशंसनीय तथा विचारणीय है। लड़कियों तथा औरतों के कर्त्तव्यों के विषय में तो सब बोलते हैं परन्तु पहली बार आप ने उन के अधिकारों की बात की है जिस के लिए आप का तहदिल से आभार।

'सुबह का उजाला' कहानी में शेरसिंह जी ने बहुत ही मार्मिक ढंग से आधुनिक युग में बेटियों को ले कर माता-पिता की चिन्ता, कण्डक्टर की संवेदनहीनता, गरीब स्त्री की विवशता तथा किसी अनजान की सहायता से मिली सन्तुष्टि तथा आनन्द को दर्शाया है।

रणवीर शाशनी जी के लेख 'लोट गांव का खोगला' ने बचपन के सुनहरे दिनों की याद दिला दी कि किस तरह बेसब्री से हम लोग अभाव में भी खोगला कुस का इन्तज़ार करते थे तथा प्रत्येक त्यौहार का आनन्द लेते थे।

'स्वंगलो मीरे चेतुईं' कविता में स्मिता तथा विनोद कुमार ठबाकु ने दरकते कराहते पहाड़' द्वारा जल परियोजनाओं द्वारा होने वाले विनाश से लाहुल वालों को चेताया है। जे. पी. नारायण जी का लेख स्पीति में हैपेटाइटिस, पाठकों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण तथा ज्ञानवर्धक है।

सुनीता कटोच द्वारा कृष्णा टशीपलमो का साक्षात्कार बहुत ही रोचक तथा प्रेरणादायक लगा।

प्रो. फुन्चोग डोलमा
रा. महाविद्यालय, कुल्लू।

मैं चन्द्रताल पत्रिका को लाहुल-स्पीति ज़िले की एक बेहतरीन पत्रिका मानता हूं। इस पत्रिका में हमें पढ़ने को बेशक कम मिलता है, लेकिन पढ़ने की सामग्री गुणवत्ता की दृष्टि से अनमोल, अनुपम और अद्भुत होते हैं। मैं खाली समय में कभी-कभी चन्द्रताल पत्रिका के पुराने, नए सभी अंक जो मेरे पास अपने गृह पुस्तकालय में संभाल कर रखे हैं, पढ़ता रहता हूं। मैं जब केलंग अपने गृह हेड क्वाटर में नियुक्त था, तब मैं सर्दियों में इस पत्रिका के लिए लेख, कविताएं लिखता था। मेरा एक लेख ''क्यों टपकता है, लाहौल में आर सी सी सलैब का छत'' इस पत्रिका में छपी थी जिसे अखबार में भी लोगों को ज्ञान व सुझाव के लिए जगह दी गई थी।

अभी मैंने चन्द्रताल पत्रिका का 30वां अंक फिर पढ़ा। मैं बीच बीच में पढ़ता रहता हूं। इस बार मुझे इस 30वें अंक के बारे में कुछ अपनी प्रतिक्रिया लिखने की इच्छा हुई।

मैं सबको सलाह देता हूं कि इस अंक को बार बार पढ़ें। इस अंक में तीन धर्मों के त्रिवेणी धार्मिक स्थल, रिवाल्सर में गुरु पद्मसम्भव की सच्ची कहानी लिखी है। मैंने अपने पूर्वजों से भी इस कहानी को सुना था। मेरे पिता जी बौद्ध धर्म के बहुत बड़े विद्वान, ज्ञानी, योगी, तांत्रिक थे। मुझे बचपन में गुरु पद्मसम्भव की कहानी बार-बार सुनाते थे। वह खुद अनेक बार लाहौल से रिवाल्सर तक पैदल जाकर वहां रिवाल्सर के ऊपर गुफाओं में तीन-तीन महीने ध्यान में बैठ चुके थे। उन दिनों गाड़ियां नहीं चलती थी। लाहुल वाले रिवाल्सर तक दर्शन करने के लिए कुल्लू दशहरा देखते हुए पैदल जाते थे।

चन्द्रताल पत्रिका की लोकप्रियता को 30 वें अंक में छपी गुरु पद्मसम्भव की कहानी से चार चांद लग गई है। इस अंक में जितने भी पढ़ने के सामग्री हैं, सभी अनमोल हैं, ज्ञानवर्धक हैं, रोचक हैं। शेर सिंह, हमारे लाहुल के एक अति लोकप्रिय लेखक हैं। सोशल मीडिया में भी इनके लेख पढ़ता रहता हूं। बहुत गज़ब के लिखते हैं। इनका एक लेख छपा है। सुबह का उजाला, इसे भी अवश्य पढ़ें।

मैं, अगले अंक की बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा करूंगा।

धन्यवाद

एन जी बौद्ध
ग्रीन पीस कालोनी, ढालपुर
मो. - 8219147900

ईशान मरबल

हाँ साहब, सुन्दर तो है

हालाँकि कभी सोचा नहीं पहले
हमारे लिए तो बस पहाड़ हैं
बचपन से देख रहे हैं, वैसे के वैसे
पर हमेशा यहां रहने वाली बात तो भूल जाइए
आस-पास देखिए, पूरा गांव खाली पड़ा है
सब जा चुके हैं निचले इलाकों की ओर
कुछ ही हैं हम मजबूरी से फंसे
कुत्ते, कव्वे और कर्मचारी
हा हा हा हा हा
तीन हफ्तों से बिजली नहीं, ना फोन का नेटवर्क
ऊपर से रोड भी बंद, और बजार में सब्जियां खतम
कब तक आलू खा-खाकर पेट भरें?
बाकि छोड़िए, आपको तो होटल में पानी पहोंच जाता होगा
गांव आकर देखिए, सब नल जमे हुए
बताइए, कैसे रहिएगा ऐसे में?
क्या सुंदरता को खाइएगा?
या बर्फ की जगह पिघला के पी जाइएगा?

गलती सरकार की नहीं है

सरकार तो केवल एक आइडिया है
एक स्ट्रक्चर, देश की तरह
प्रॉब्लम तो यह है न कि चलाने वाले हम इंसान हैं
अब जिस काम के लिए बखूबी सैलरी मिलती हो
उसे करने के लिए हम ऊपर से मीठे-कड़वे का खर्च मांगें
या फिर किसी मंत्री-बाबू के फोन का इंतज़ार करें
तो बताओ, इसमें सरकार भी क्या कर सकती है?
हर कोई अपना काम कर ले, तो प्रॉब्लम ही क्या?
हा हा हा हा हा हा, वैरी क्यूट!
हम भी आए थे शुरुआत में आशावाद और आइडियलिज़्म लेकर
पर कुछ साल के रगड़े के बाद सब ढीले हो जाते हैं
तुम भी हो जाओगे, और फिर सब मामूली लगेगा
बस ये जो सोचने की आदत है, इसे छोड़ दो
और हाँ, कागज़ बराबर रखना!
कागज़ सही, तो सब सही
आखिर में बस नौकरी ही तो बचानी है
कल को तुम्हारी भी फैमिली होगी
कैसे चलेगा वरना?

सुनीता कटोच

एक बच्ची थी

जो अ आ सीखने से पहले
सीखती है गोबर के उपले बनाना
जो ए बी सी लिखने से पहले
सीखती है रोटी गोल-गोल बनाना
मिट्टी के साथ घट-घट[1] खेलते-खेलते
उस के कोमल हाथों में न जाने कितनी ही
आड़ी तिरछी रेखाएं बन गई हैं
यह सब बहुत आसान लगता है
टॉम एण्ड जेरी देखने की तरह
अपने सपनों में देखती है वो खुद को
बच्छी की पूंछ पकड़ कर दौड़ते हुए
खेतों में तितलियों के पीछे भागते हुए
भेड़्डुओं को चराने ले जाते हुए

एक लड़की थी

दादा दादी से
गरिदेई[2] की कथा सुनते-सुनते
गरिदेई सी सुन्दर होने की आशा लिए
वो जवान हुई
उस के सुबह की शुरुआत
गोबर के उपले बनाने से ही होती
कड़ी धूप में खेतों से
घास के एक-एक तिनके को बीनते हुए
अपने मन के अपवित्र विचारों को भी
खुद से यूं ही दूर करती जाती थी
घास काटते-काटते न जाने
अपने कितने अरमानों के पंख काटती थी
फिर भी उसका चेहरा फूलों सा खिलता रहता
अपने घर इस छनि[3]
इन खेतों से बाहर
किसी और दुनिया की
उसने कल्पना ही नहीं की थी
उसके चेहरे की आभा
कहानियों की गरिदेई को भी पीछे छोड़ देती

एक बुढ़िया थी

बाल बच्चों को बड़ा करते-करते
अचानक वो बुढ़िया हो गई
कमर बोझ ढोते-ढोते झुक गई थी
अब भी उसके चेहरे पर
एक अलग तेज रहता है
अपने हर चीज़ को वो
पोटली में बांधती जाती है
जिसे वो लकड़ी के काले बक्से में
सबसे अंदर वाले कोने में सहेजे रखती है
मानो उस पोटली में कोई सामान नहीं
उसके अरमान सजे हों
उसके चोलू[4] की जेब में
हमेशा पुग[5] या गरी के टुकड़े रखे होते
छोटे-छोटे बच्चों को देखते ही
उन्हें मुट्ठी भर-भर कर पुग देती
गोबर के उपले अब भी उसके हाथ में आते
बिल्कुल सूखे उपले
हर दम जलने को तैयार
उसके सूखे शरीर को
एक सुखद गर्माहट का एहसास दिलाते
वो उपले लकड़ी के साथ मिल धुआं बन उड़ जाते

एक पहाड़ था

एक पहाड़ था, कठोर, विशाल हृदय वाला
जो उसकी हर यात्रा का गवाह था
उसके बचपन से उसके बुढ़ापे तक के
एक-एक लम्हे को उसने भी जिया था
उसके साथ कभी रोया कभी हंसा था वो भी
उसकी सुंदरता का कायल था वो भी
आज वो पहाड़ भी बूढ़ा लग रहा है
भरभरा कर गिर पड़ता है जहां कहीं से
फिर भी शान से सर उठाय खड़ा है आज भी
एक बूढ़ा सा वो पहाड़

---

1 घट - घराट
2 गरिदेई - लोक कथाओं की एक नायिका।
3 छनि - गाय, बैल, भेड़ आदि बांधने या रखने की जगह।
4 चोलू - लाहुल का पहनावा जो सूती या ऊनी कपड़े से बनता है।
5 पुग - गेहूं के भुने हुए दाने।

टशी अंगरूप गड़फा

सन् उन्यासी का दर्द

वर्ष उन्नीस सौ उन्यासी
हिम और अवधाव का
वह नृशंस मंज़र
एक संदेश मानव के लिए
नश्वर है जीवन मानव का
क्षणिक एवं क्षण भंगुर
समय का घोड़ा
दौड़ता गया सरपट आगे
अविराम एवं निश्चल
अन्तराल चालीस वर्षों का
एक लम्बा अन्तराल निःसंदेह
कटु एवं मधुर स्मृतियों का लेखा-जोखा
एक अविस्मरणीय लेखा-जोखा
दुखद एवं दर्दनाक
चलचित्र की तरह मस्तिष्क पटल पर
अविस्मरणीय यादें
भुलाए जो भूलती नहीं
मिटाये जो मिटती नहीं
चलचित्र की तरह मस्तिष्क पटल पर
सपने जो संजोये थे उन्होंने
रह गए अधूरे
क्या सोचा था उन्होंने
हुआ क्या लेकिन
घटित हुई एक घटना
जो थी अनहोनी
एक सिलसिला यादों का
अविस्मरणीय एवं असहनीय
चलचित्र की तरह मस्तिष्क पटल पर
धुंधली सी तस्वीर मस्तिष्क पटल पर
भुलाए जो भूलती नहीं
मिटाये जो मिटती नहीं
यादें अविस्मरणीय एवं असहनीय
कटु एवं मधुर स्मृतियों का सिलसिला
न जाने कब तक
न जाने कब तक !!

गांव खोपनी, ज़िला कुल्लू, हि.प्र.

राजेश कटोच

एक लाहुली की ज़िंदगी

जनवरी से दिसंबर तक की बंदगी।
समाज की नज़रों में जनजातीय हैं हम,
असल में मेहनकश इंसान हैं हम।
चारों ओर व्यवस्थाओं की बदहाली है फिर भी,
चारों ओर से खुशहाल हैं हम,
लाहुली हैं हम असल में मेहनतकश इंसान हैं हम।
एक तरफ जनवरी से मार्च तक की सर्द है यहां,
वहीं तरह-तरह के दर्द भी हैं यहां,
उस दर्द को कम कर सके ऐसा दवाखाना भी है।
वहीं एवरेस्ट तो नहीं एवरेस्ट सा रोहतांग दर्रा भी है,
कभी रोहतांग को कोसते हैं तो कभी मौसम को,
कभी सरकार को कोसते हैं तो कभी अपने आप को।
वक्त गुज़रता है यहां मगर दर्द नहीं,
ऐसे में अप्रैल आता है और उसके बाद मई।
खेती-बाड़ी नातेदारी सब निभाते हैं बारी-बारी,
फिर आता है धीरे-धीरे जून और जूलाई,
फिर बजता बैंड बाजा और बजती बांसुरी।
अगस्त, सितम्बर और अक्तूबर जागे किसान रातभर,
फिर नबंवर फिर दिसंबर,
न एयरटेल न बीएसएनएल,
उम्मीद सबकी टिकी रहती,
रोहतांग टनल रोहतांग टनल।
लाहुली हैं लाहुली ही रहेंगे,
मुश्किलें जितनी भी हों,
हम न हटेंगे हम न डरेंगे,
लाहुली हैं हम असल में मेहनतकश इंसान हैं हम।

शमशेर सिंह संगला

लौट कर तुम्हारे गाँव

आया हूं; लौट कर तुम्हारे गाँव;
और सभी हैं लेकिन तुम नहीं हो!
मौन हैं दिशाएं; हम कहां जायें;
उदास आँखों में जब;
बोलो अनु० कैसे मुस्काए!!
सूना है द्वार; के पीपल के छाँव;
आया हूँ; लौट कर तुम्हारे गाँव!!
दहरी पर लटका है टूटा बन्दनबार;
बोलो; अब करें किसका मनुहार!!
अच्छा हो; धुन्धला जाये यह दर्पन;
अच्छा हो; रहे फिर न यह प्यार !!
यहाँ-वहाँ; एक याद छोड़ गये हैं पाँव;
आया हूँ लौट कर तुम्हारे गाँव!!
कितना-कितना बेचैन है हमारा मन;
जुड़ते हैं बार-बार बिखरे सपन!!
टूटते हैं यादों के इन्द्रधनुष रह-रह कर;
लगते हैं सूने घर; देहरी; आँगन!
बतलाओ किस के आगे लें तुम्हारा नाम;
आया हूँ लौट कर तुम्हारे गाँव!!

नीरामाटी, बन्द्रोल, कुल्लू

सरला चम्बयाल

गीत

प्रस्तुत गीत मैंने तब लिखा जब मैं पहली बार स्पीति यात्रा पर गई थी, तो वहां समय बिताना अत्यन्त कठिन लगा, ऐसा लगता था कि समय जैसे रुक गया हो। ऐसे में अपने आस-पास जो कुछ देखा और महसूस किया वह इस गीत में वर्णित है। मैंने देखा स्पीति की औरतें इतने कठिन भौगोलिक परिवेश में किस तरह जीवन को बनाए रखती हैं। भौगोलिक कठिनाइयों के बीच घर बनाती महिलाओं को देखकर जहां एक ओर हैरानी होती है वहीं सुखद अनुभव भी। किस-किस तरह स्त्रियां अपनी पूरी जिजीविषा के साथ मुश्किलों से लड़ती हुई प्रकृति को भी चुनौती देती हुई जीवन के गीत गाती हैं। इस तरह वे जहां एक ओर भवन निर्माण का काम करती हैं वहीं दूसरी ओर अपने बच्चों को भी संभालती हुई दोहरी मेहनत करके अपनी ताकत का परिचय देती हैं।

काजे री इना बेटड़ी रा सा कठण ज़ीणा।
एक बेटड़ी लागी गारी मुछदी किरडू भौरिया धीना।
घोर चीणदी लागी माटे रा बोला भोरदी लागी बीमा।
मरद लागे छोलो खेलदे बेटड़ी कमौईया ज़ीणा।
काजे री इना बेटड़ी रा सा कठण ज़ीणा।
शोहरू सुआए पेटी न बोला शोहरू जागीया दूध पीणा।
शोहरू बेटड़ी भालदे बेठे आसै उआना
न इना भालिया लागी धीणा।
हिंउआ रै भरदी चेमड़े आगी उपरै लागी हिंउआ गलान्दी।
बेटड़ी गुंधदी बोला जुराबा सुआटर
गुंदिया मोटी सिउनियै सिहणा।
काजे री इना बेटड़ी रा सा कठण ज़ीणा।

सामाजिक व पारिस्थितिक सक्रियतावाद और द्विविधता

बलदेव कृष्ण घरसंगी

इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि आज लाहुली समाज सतत उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। लाहुली समाज हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा हेतु जिज्ञासा लिए खड़ा है। हमारी साक्षरता दर देश के अग्रणी राज्यों के साथ खड़ी है और इसके साथ ही यह स्वाभाविक है कि साक्षर समाज चिन्तन-मनन की प्रक्रिया में अधिक तत्पर रहेगा और यह अमूमन आज देखने में भी आ रहा है। आज लाहुल में सामाजिक, धार्मिक, पर्यावरण व जन चेतना हेतु दर्जनों संस्थाएं अपने-अपने स्तर पर कार्य कर रही हैं। आज डिजिटल युग में सोशल मीडिया ने इसे और बल दिया है। कोई भी, कहीं भी अपना ग्रुप बना कर अपना ऐजेण्डा चला सकता है और यह हो भी रहा है।

लाहुल में सामाजिक और पर्यावरण सक्रियतावाद भारत वर्ष की आज़ादी से पहले भी रहा है और तत्कालीन समाज ने अपने स्तर पर एक्शन भी लिए हैं। उदाहरण के तौर पर निर्वाह योग्य कृषि अर्थव्यवथा के अंतर्गत गरीबी से जूझने के लिए बहुपति विवाह का ढांचा खड़ा करना, गांव स्तर पर वैली व पोपलर वृक्षारोपण हेतु एक ढांचागत नीति बनाना, सिंचाई की व्यवस्था, घासनी का संरक्षण, छ्रमा पौधे का भूक्षरण रोकने हेतु वैज्ञानिक उपयोग और बहुत सारी व्यवस्थाएं अपनाई गई वे उस समय के समाज में व्याप्त बहुत ही सुलझी हुई मानसिकता को दर्शाती है। उन व्यवस्थाओं को जाने तो उनमें दोहरापन नहीं था अपितु उस समय आर्थिक और भौगोलिक स्थिति से उत्पन्न सच्ची व व्यावहारिक व्यवस्था थी। सामाजिक तौर पर भी जो खामियां रहीं हैं वह वर्ण व्यवस्था से उपजा नहीं था अपितु आर्थिक आधार से वर्ण व्यवस्था स्थापित हुई जो आज धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। समाज में असमानता का भाव आज भी खड़ा है, मगर यह असमानता उन्नति में रोड़ा अटका नहीं रही है। अपितु यह एक तरह से आगे बढ़ने हेतु प्रेरणा का काम कर रही है। जिस प्रकार समाज हर प्रकार की चुनौतियों से जूझ रहा है और उससे उबर रही है वह एक संतोष का विषय है।

इन सब उपरोक्त जनचेतना और एक्टिविज़्म के परिदृश्य पर अगर विचार करें तो वर्तमान में जो सामाजिक व पर्यावरण एक्टिविज़्म पनप रहा है उसमें काफी हद तक दोहरापन झलकता है। सामाजिक जन चेतना व जागृति की आड़ में राजनीतिक अंकाक्षाओं और निजी हित साधने का आभास होता सा दिखता है। समाज में लोग इस प्रकार की सांस्कृतिक, पारिस्थितिक सक्रियतावाद को संदेह की दृष्टि से देखना शुरू कर देते हैं। जिससे इसका सामाजिक आंदोलनों पर भी असर पड़ता है। कई बार यह बात आश्चर्य पैदा करती है कि तीस-चालीस हज़ार की जनसंख्या के पीछे दर्जनों जनचेतना संस्थाएं कार्यरत हैं और इस प्रकार पच्चीस सौ की जनसंख्या पर एक संस्था कार्यरत है। इससे हम क्या निष्कर्ष निकालें? क्या हमारा समाज समूहों में बंटा है? खासकर साक्षरता दर अधिक होने से और आरक्षण व्यवस्था का भरपूर लाभ उठाने की स्थिति में आज हमारे पास प्रचुर मात्रा में आय के स्रोत हैं और पब्लिक और प्राइवेट संस्थाओं में उच्च स्तर पर कार्यरत होने से एक भावना जो उन्हें प्रेरित करती है कि वह भी समाज के लिए सार्थक कार्य कर सकते हैं। और इस प्रकार निश्चय ही बौद्धिक रूप से उन्हें लगता है कि वह समाज का राजनीतिक, सामाजिक व पर्यावरण हेतु प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। ऐसे में दर्जनों संस्थाएं एक ही समाज के अलग-अलग विषयों पर एक ही समय में समान रूप से कार्यरत हैं। इससे एक बात तो तय होती है कि समाज जागरूक है पर इससे हितों और संघर्ष की अतिव्यापी होने की संभावनाएं भी बढ़ जाती हैं।

आज़ादी के बाद लाहुल में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व पर्यावरण एक्टिविज़्म के कुछ उदाहरण उपलब्ध हैं। समाज के हर वर्ग ने शिक्षा की गुणवत्ता को अपनाया, सांस्कृतिक स्तर पर स्नातन धर्म के हस्तक्षेप के कारण गुशाल यौर, आदि को समाप्त करना और इसके पश्चात् अन्य स्थानों पर भी इसका अनुकरण करना; खासकर शांशा यौर का भी इसके एक-दो वर्ष बाद बंद होना इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार आर्थिक आंदोलन में कुठ-मनु, ख़्वज़द मेक्सिकन, आलू का व्यापारिक उत्पादन, हॉप्स उत्पादन के बाद मटर, गोभी और संमानतर रूप से सेब आदि पौधों का वृक्षारोपण को अपनाना मुख्य रहा है। एक सतत प्रयास और नव प्रयोग लाहुली जन समाज करता रहा है। आपातकाल की ज़्यादतियों के खिलाफ राजनीतिक स्तर पर 1977 के चुनाव में लाहुली विद्यार्थियों द्वारा पूरे लाहुल में अपने स्तर पर घर-घर चुनाव प्रचार करना तथा लाहुल में 1979 के हिमस्खलन से उपजी स्थिति पर शिमला में लाहुली विद्यार्थियों द्वारा आन्दोलन करना इसी एक्टिविज़्म का हिस्सा रहा है। जिस्पा बांध विरोध आंदोलन, सेली बांध संघर्ष समिति आंदोलन, और हाल ही में मेगा हाइड्रो प्रोजैक्ट विरोध आंदोलन देखने को मिल रहे हैं।

इस प्रकार आज पर्यावरण का विषय बुद्धिजीवियों के लिए एक प्रिय विषय बन गया है और सोशल मीडिया ने इसे और सुविधाजनक बना दिया है। लाहुली एक्टिविज़्म का यह एक विषय है जो विरोधाभासों से ग्रस्त हैं। अतीत में भी पर्यावरण पर आघात होता था परन्तु उसके प्रभाव का अध्ययन वैज्ञानिक स्तर पर धीरे-धीरे सामने आ रहा है। जैसा कि हम जानते हैं पर्यावरण के कई आयाम हैं। इसका वैश्विक और उत्तर-दक्षिण महाद्वीपों और उत्तर-दक्षिण अक्षांश, देशज, राज्य, जिलों व पंचायत स्तर पर भी आकलन करना आवश्यक है और इसका वैज्ञानिक आधार भी है। ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव समय-स्थान से इतर सब जगह पड़ता है। जब आप फ्रिज, वाहन, वातानुकूलित उपकरणों का इस्तेमाल करते हो, व्यापारिक स्तर पर जंगल, क्रशर प्लांट, सीमेंट उद्योग, सड़क निर्माण, बिजली उत्पादन का दोहन करते हो तो इसका प्रभाव पूरे विश्व के फ्लोरा और फौना पर पड़ता है। मगर पर्यावरण एक्टिविस्ट्स को अपनी सहूलियत के हिसाब से कार्य करना होता है। उनके हिसाब से रोहतांग टनल बने, रोहतांग जोत को मशीनें सड़क बनाने हेतु तहस-नहस कर दें और इस भू-भाग को वहां पर फलने-फूलने वाले 250 से अधिक फलोरा को लुप्त होने की कगार पर खड़ा कर दे लेकिन, हमारे पर्यावरण एक्टिविस्ट्स इस पर मौन धारण कर लेगें क्योंकि यहां लाहुलियों के विकास का विषय आ जाता है। हमें बिजली सप्लाई 24x7 मिलती रहे, हर घर में 4-5 वाहन खड़े रहें, खेती में कीटनाशकों का भरपूर प्रयोग करें, मिट्टी की आवश्यकताओं को नज़र अंदाज़ करके अवैज्ञानिक स्तर पर रसायनिक खादों का अत्यधिक प्रयोग करें और अब मैगा हाइड्रो प्रोजैक्ट्स की जगह पर ईको, धार्मिक और साहसिक पर्यटन अपनाने पर हमारे पर्यावरण एक्टीविस्ट बात कर रहे हैं। जैसा कि सभी जानते हैं आधुनिक विकास की अवधारणा उपभोक्तावाद पर टिकी है। राष्ट्रीय विकास दर वाहन उत्पादन, ऊर्जा खपत, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर टिकी रहती है। और इस सब मकड़ जाल में लाहुली पर्यावरण सक्रियता मेगा हाइड्रो प्रोजैक्ट्स के धुर विरोध पर टिकी हैं जोकि असामान्य नहीं है परंतु वह जो इसका विकल्प दे रहें है वह भी तो पर्यावरण हितैषी नहीं है। मेगा हाइड्रो प्रोजैक्ट्स सिर्फ लाहुली भौगोलिक पारिस्थितिकी को कुछ हद तक निश्चय ही बिगाड़ेगा मगर इसका जो विकल्प वह पेश कर रहे हैं वो तो आपको आर्थिक, भौगोलिक रूप से क्षत विक्षत और मानसिक रूप से व्यवस्था का गुलाम बना देगा। वर्तमान उपभोक्तावाद और विकास की अवधारणा के उदाहरण के तौर पर हमारे सामने मेगा हाइड्रो प्रोजैक्ट पंडोह और लारजी डेम के रूप में हैं और साथ में विकल्प के रूप में पर्यटन क्वीन मनाली भी है। अगर हम इन दोनों का पर्यावरण, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक रूप से विवेचना करें तो एक तरफ उपरोक्त मेगा हाइड्रो प्रोजैक्ट्स से कुल्लू व मंडी में कोई सीधा प्रभाव नज़र नहीं आता वहीं मनाली की पर्यटन नगरी की बात करें तो हर तरफ से इसका प्रभाव पर्यावरण व जनमानस पर पड़ता दिख रहा है और रोहतांग टनल खुलने के पश्चात् यही परिस्थिति लाहुल में उपजेगी जिसे हम अपनाने की बात कर रहे हैं। इस प्रकार तो हमें दोनों ही विकल्पों को नकारना चाहिए। अब चड़ीगढ़-मनाली-लेह रेलवे लाईन जो प्रस्तावित है जिसमें 10 से 250 किलो मीटर टनल व अंडर ग्राउंड स्टेशनों का प्रावधान है उस पर मेगा हाइड्रो प्रोजैक्ट विरोधी एक्टिविस्ट्स क्या कहेंगे? क्या वह इसका भी विरोध करेंगे? पर्यावरण सक्रियतावाद स्थान विशेषिक होते हुए भी इसका वैश्विक प्रभाव निश्चित है। इस तरह स्थानीय पर्यावरण सक्रियता के साथ-साथ इसको वैश्विक प्रभाव के संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। जनमानस में सही सूचना फैलाने की आवश्यकता है और इन आंदोलनों में स्थानीय निवासियों की भागीदारी तभी सही मायने में सुनिश्चित होगी जब वे इस आंदोलन के हर पक्ष से वाकिफ हों। इसके लिए सोशल मीडिया पोस्ट डालने की अपेक्षा बाहर आकर प्रभावित क्षेत्रों में जाकर इसके दोनों पक्षों को सामने रखकर संभावित प्रभावित क्षेत्र के लोगों को इस पर फैसला लेने हेतु अधिकृत किया जाना चाहिए। कोई भी एक्टिविज़्म या आंदोलन सेमिनार हॉल तक सरल दिखता है मगर धरातल पर इसके कई आयाम होते हैं और इन पर्यावरण सक्रियता के नेतृत्व को इसके हर पक्ष से वाकिफ होना आवश्यक ही नहीं अपितु इसे जनमानस के सामने प्रस्तुत करके उनकी सहमति से ही आंदोलन स्थापित करने की आवश्यकता है अन्यथा यह आंदोलन अपने ही दोहरेपन के बोझ से दब कर शीघ्र ही क्षीण होकर समाप्त हो जाएगा।

दिन में अंधेरा

शेर सिंह

आज कोई विशेष काम नहीं था। सोचा, अपने पुराने ट्रंक को साफ कर दूं। ट्रंक वर्षों से गोदाम में पड़ा-पड़ा कूड़ा-कबाड़ों के साथ धूल, मिट्टी खा रहा था। मुझे याद था, उस में कुछ पुरानी चीजें, ऊनी चादर, मफलर इत्यादि पड़े थे। विचार यही था कि उन्हें धूप दिखा दूं। इस काम को करने के प्रयोजन से मैंने ट्रंक में जड़े ज़ंग खाए पुराने ताले में चाबी डाली। ज्यों ही ट्रंक खोला, तो फिनाइल (नैप्थइलीन बॉल्ज़) की तेज़ महक मेरी नाक से टकराई। सफेद रंग वाली फिनाइल की गोलियां गल चुकी थीं। लेकिन कुछ अभी भी तिल के दानों जैसे छोटे से आकार में बची अपनी महक बिखेर रही थीं। मैंने एक-एक सामान को पुराने मगर मजबूत ट्रंक से बाहर निकाल-निकाल कर देखना शुरू किया कि देखूं साबुत बचे भी हैं? अथवा दीमक, सिल्वर फिश ने उन्हें छलनी बना ली है। पहले ऊनी चादर, मफलर, टोपी हाथ लगे। उन्हें धीरे-धीरे बहुत ध्यानपूर्वक, सावधानी तथा हिफाज़त से बाहर किये तो नीचे कुछ किताबें, फाइलें दिखीं। फाइलों के अंदर क्या थे, मुझे याद नहीं था। वर्षों से मैंने इन्हें नहीं देखा था। हाथ लगाने का तो मतलब ही नहीं था। इनको उलटते-पलटते एक फाइल हाथ लगी, तो मैं उसे खोले बिना नहीं रह सका। फाइल के अंदर नज़रें दौड़ाई, तो उस में एक कहानी लिखी हुई दिखी। हस्तलेख में! नीली स्याही वाले पेन से। कहानी का शीर्षक भी अजीब सा लिखा था, "दिन में अंधेरा"। इस पर कहानी लिखने की तारीख 24-09-1976 दर्ज थी। यानी लगभग 42-43 वर्ष पहले की लिखी! कहानी के प्रति मेरी उत्सुकता बढ़ गई। मैं अपने आपको उसे पढ़ने से रोक नहीं सका। मैंने सारे काम वैसे ही छोड़कर उस कहानी को पढ़ना शुरू किया, तो पढ़ता ही गया। आइये आप भी कहानी को पढ़ें!

"विजय !"

"कौन?"

"मैं हूं... श्याम।"

"ओह श्याम... आओ आओ ...कब आए शहर से?"

"कल शाम को पहुंचा था।"

"बैठो श्याम... बैठो।" विजय ने टटोलकर स्टूल पर अपना हाथ रखा। श्याम विजय के बिस्तर के पास ही एक स्टूल खींचकर बैठ गया। उसने विजय की पथराई हुई आंखों में देखा। आंखें बिल्कुल साफ थी। उनसे लेशमात्र भी आभास नहीं होता था कि कहीं कुछ खराबी है।

"और सब ठीक से हैं न? राजू आदि..."

" हां... सब अच्छे हैं।" श्याम ने एक ठंडी सांस लेकर कहा।

"तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है?" विजय पूछ रहा था।

"पढ़ाई तो चलती रहती है। इधर कुछ काम से घर आ गया था।

मैंने जब सुना कि तुम्हारी आंखें ...''

''क्या बताऊं श्याम।'' विजय ने एक लंबी और ठंडी आह भरी। ऐसा लगा मानो अपने पर काबू करना चाह रहा हो। ''भाग्य की विडंबना है! और मेरा दुर्भाग्य है... इसी लिए यह सब हुआ। वरना न जाने क्या।... खैर छोड़ो?''

श्याम देख रहा था कि विजय ये सब कहते हुए बहुत उदास हो गया था। निराशा की घनी छाया उसके चेहरे पर पसर गई थी। ये सब बताते हुए उसकी आवाज़ में गहरा दर्द घुला हुआ लग रहा था। वह एक अलग कमरे में अपने बिस्तर पर पालथी मारकर बैठा हुआ था। उसकी आंखों के नीचे काले घेरे पड़ गए थे। जैसे किसी ने सफेद रंग की दीवार पर कोयले से लकीरें खींच दी हों। चेहरा सूखा हुआ। होंठों पर पपड़ी जमी हुई। अस्त-व्यस्त, छोटी-छोटी दाढ़ी। ठोडी पर गुच्छों के रूप में दाढ़ी जैसे किसी बौद्ध लामा का होता है। सिर के बाल बिखरे, फैले हुए। श्याम ने ध्यान से उसका ऊपर से नीचे तक मुआयना किया। उसे बहुत अफसोस हो रहा था। ईश्वर किसी भले आदमी के साथ ऐसा मज़ाक क्यों करता है? मज़ाक है या किसी जन्म की सज़ा दी है! अथवा अचानक कोई लाईलाज बीमारी? ऐसे दिन किसी को न दिखाए। वह मन ही मन सोच रहा था। लेकिन प्रकट में वह खामोश ही था।

विजय की उम्र ही कितनी थी? सिर्फ 20 वर्ष! छह फुट का निकला हुआ कद। शारीरिक रूप से गठीला। बहुत मज़बूत। पढ़ने की ज़्यादा ललक, परन्तु दिमाग से थोड़ा मोटा! 20 वर्ष का हो गया था परन्तु मैट्रिक भी नहीं कर पाया था। पिता गांव के जाने-माने सेठ। पूरे इलाके में उसके टक्कर का कोई दूसरा सेठ नहीं था। सैंकड़ों बीघे ज़मीन का मालिक। पशुधन से भरे खुड्, दोघरे, बाड़े। गाय-बैल, भेड़-बकरियां, चार-चार घोड़े! परन्तु इन सबके होने से क्या होता है? भगवान किसी को देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। परन्तु लेता है, तो उसकी दुखती रग को पकड़ नोच-नोच कर छीन लेता है! वाह भगवान! हे ईश्वर...शायद इसे ही कहते हैं कहीं धूप, कहीं छांव!

श्याम टकटकी लगाए विजय के मुख को ही देख रहा था। उसे उसकी आंखों में लगातार देखते रहने का साहस नहीं हो रहा था। दोनों चुप थे। फिर विजय ही कुछ चौंक कर बोला, ''तुम्हारे लिए चाय के लिए बोलना तो भूल ही गया। अम्मा! ओ अम्मा...'' उसने अपनी चारपाई पर बैठे-बैठे ही दो-तीन ज़ोर की आवाज़ लगाई। कुछ देर बाद मां उसके कमरे के दरवाज़े के सामने आकर कुछ पूछने ही वाली थी कि श्याम को देखकर रुक गई।

''नमस्ते मासी जी!'' श्याम ने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए।

''नमस्ते बेटा! कब आया तू?''

''कल ही आया हूं मासी।''

''अम्मा! श्याम के लिए चाय लाओ न... देखो तो पूरे एक साल के बाद आया है।'' विजय ने अपनी मां से कहा।

''अच्छा बेटा! अभी आई ।'' कहती हुई मां कमरे से बाहर निकल दूसरी ओर चली गई।

''मुझे बचपन की बहुत याद आती है।'' विजय ने दोनों के बीच पसरे सन्नाटे को तोड़ते हुए बोलना शुरू किया। ''जब हम तुम मिलकर स्कूल जाते थे। कितना आनंद आता था। बाद में तो तुम शहर को चले गए। और मैंने भी स्कूल छोड़ दिया। सोचा... घर और खेती बाड़ी के काम में मदद करूंगा। ज़मीन... खेती-बाड़ी का काम अधिक होने के कारण कुछ काम आधे-अधूरे ही रह जाते थे! कुछ तो वैसे ही खेतों में छूट जाते थे। पिता जी के कहने पर मैंने पढ़ाई छोड़ दी थी। बारिश नहीं होने के कारण फसलें सूख रही थीं। सिंचाई के लिए पानी की कमी थी। हर वर्ष पहले के मुकाबले फसलें कम से कमतर होने लगी थीं। तुम्हें तो पता है न... पानी की कमी पूरी करने के लिए नहर, कुहल निकालने का काम फिर से शुरू करने की स्कीम पूरे इलाके भर के लोगों ने बना ली थी। इसी स्कीम को अमल में लाया जा रहा था। पिता जी कुहल का काम कर पाने की स्थिति में नहीं थे। मुझे ही काम पर जाना पड़ता था। नहर का काम शुरू हुए एक महीना भी नहीं हुआ होगा? मुझे ऐसा लगने लगा था मानो मेरी आंखों के आगे धुंध छाता जा रहा हो!'' विजय लगातार बोलता जा रहा था। श्याम अपलक निगाहों और निस्पंद होकर उसकी बातों को सुनता जा रहा था। उसकी आवाज़ किसी गहरे कुएं से आती लग रही थी। श्याम केवल बीच में हां... हूं... ही कर पा रहा था।

विजय का बोलना, बतियाना जारी था। ''पहले तो मैं इसे अपना वहम ही समझता रहा। लेकिन धीरे-धीरे न जाने क्यों मुझे सामने की चीज़ें भी अस्पष्ट और धुंधली सी दिखने लगी थी। मैंने अपनी इस परेशानी, तकलीफ के बारे में घर या किसी अन्य को कुछ भी नहीं बताया था। तुम तो जानते हो... मैं थोड़ा संकोची किस्म का हूं, खुद तकलीफ झेल लेने वाला। लेकिन दूसरों को कष्ट... तकलीफ न हो... यही सोचता था। एक दिन सुबह उठा तो मेरी आंखें मूंदी जा रही थी। मैंने जल्दी-जल्दी पलकें झपकाई, तो ही आंखें खुल पाई। मुझे अब बहुत दूर की चीज़ें बिल्कुल काली दिखाई पड़ने लगी थीं। मुझे लगा... मेरी आंखें कमज़ोर हो गई हैं। इसलिए अब भी किसी प्रकार की चिंता नहीं की। दरअसल... वे बेफिकरी के दिन थे। मैं रोज़ ही नहर के काम को जाता रहा। एक दिन रास्ता भटक कर दूसरी ओर निकल गया। जब काफी दूर तक अनजान जगह को चला जा रहा था, तो चलते-चलते ही मुझे कुछ लोगों की आपस में बातचीत की आवाज़ सुनाई देने लगी। तीन-चार आदमी उधर से गुज़र रहे थे।'' विजय बोलता जा रहा था।

''कहां जा रहे हो?'' उन्होंने पूछा था।

''नहर के काम पर जा रहा हूं।''

''परन्तु यह रास्ता तो नहर को नहीं जाता है!'' उन्होंने बताया। ''मैं घबरा गया। और वापस गांव को लौट गया। वे अनजान... अपरिचित व्यक्ति भी मेरे साथ थे।''

''इस घटना के बाद मैंने काम पर जाना छोड़ दिया। जिस दिन काम पर नहीं गया, उसके दूसरे दिन जब हाथ, मुंह धोने लगा तो पानी की छींटें आंखों पर भी मारी। आंखें खोली तो आंखों के आगे बिल्कुल अंधकार छा गया था। घबरा कर जल्दी-जल्दी आंखें मली। परन्तु व्यर्थ! मैं अंधा हो चुका था! मैं चिल्ला पड़ा... मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा है। कुछ दिखाई नहीं देता है। मैं बिलख उठा। घर के लोगों ने आकर मुझे झंझोड़ा कि मैं पागल हो गया हूं। जो इस प्रकार चिल्ला रहा है। मैंने रो-रो कर अपना अंधा होने की बात कही। घर के सदस्य यह सुन कर पहले तो विश्वास ही नहीं कर सके। परन्तु जब असली स्थिति को समझे, तो उनको ऐसा लगा मानो उन्हें बहुत गहरी खाई में किसी ने धक्का देकर गिरा दिया था। मैं स्वयं तो सदमे में था ही, उन्हें भी अचानक ज़ोर का और भारी सदमा लगा। वे मुझे कंधों से पकड़ कर कमरे के अंदर ले गए। तरह-तरह के सुझाव दिए जाने लगे। परन्तु मैं तो अंधा हो चुका था। मेरे दुर्भाग्य पर जैसे आकाश रो पड़ा था। धरती की कड़ी छाती फट गई थी! सारे गांव में यह बात आग की तरह फैल गई थी कि विजय अंधा हो गया है। गांव के लोग मुझे देखने के लिए घर में आने लग पड़े थे।'' विजय का आत्म प्रलाप जारी था। श्याम उसके सामने बैठा आश्चर्य और दुखी मन से केवल सुनता जा रहा था। उसका दिल सहानुभूति, करुणा से भर उठा था। वह इतना जड़वत् हो गया था कि उसके मुंह से सहानुभूति के बोल भी नहीं निकल रहे थे। विजय नियति के इस कठोर प्रहार के आघात को सहन करने के लिए विवश था। श्याम के मन में तो केवल एक ही विचार घुमड़ रहा था... कितना आभागा है। बेचारा ...

''मुझसे न रोते बनता था, न हंसते! बिल्कुल पागलों की तरह हो गया था। कभी-कभी ज़ोर-ज़ोर से अपने सिर पर हाथ मारने लगता था। घर के लोग मेरे हाथ पकड़ लेते। ऐसा नहीं करने के लिए समझाने की कोशिश करते। परन्तु मुझसे चुप ही नहीं बैठा जाता था। तंग आकर एक दिन पिता जी ने मुझे बहुत ज़ोर से झिड़क दिया। मैं सकते में आ गया। मुझे अपना कष्ट... दुख जताना भी घर के लोगों को गवारा नहीं था! लेकिन मेरे कष्ट और अचानक हुए अंधेपन की पीड़ा से वे भी दुखी और असहज थे। परन्तु उस दिन डांट खाने के बाद मैं बिल्कुल खामोश...चुप हो गया। अपने होंठों को सिल लिया।'' विजय का मानसिक संताप, दुख तथा शारीरिक कष्ट, दर्द से उपजी घोर निराशा उभर आई थी। गहरी आंतरिक पीड़ा उसके चेहरे पर झलक आई थी। यह सब बताते, बोलते उसकी आंखें बार-बार छलछला उठती थी।

''तीन चार दिन के बाद पिता जी और मामा मुझे लेकर शहर को रवाना हुए। शहर में आंखों के अस्पताल में जब डॉक्टरों ने मेरी आंखों की जांच शुरू की, तो सारी घटनाएं उन्हें विस्तार से बता दी। डॉक्टर सोच में पड़ गए! क्या बीमारी हो सकती है? डॉक्टर असमंजस में थे। ठीक-ठाक आंखों वाला... भला चंगा आदमी अचानक कैसे अंधा हो सकता है? वे किसी नतीजे पर नहीं पहुंच रहे थे। आखिर में उन्होंने कहा कि किसी नस के कमज़ोर पड़ जाने के कारण ऐसा हो गया है। ऑपरेशन के लिए यह अभी ताज़ा है। कुछ दिन पुराना पड़ जाए तो ऑपरेशन संभव है। मैं डॉक्टरों से बार-बार कहता रहा कि जो भी हो, मेरा ऑपरेशन कर लो। परन्तु वे नहीं माने। हार कर पिता जी बिना किसी दवा, इलाज के मुझे वापस घर ले आए। तुम तो जानते हो न...हमारे पिता के पास पैसे तो बहुत हैं ...परन्तु कलेजा बड़ा नहीं है। दूरदृष्टि, भविष्य की सोच शायद है ही नहीं?''

विजय की आत्मा की पीड़ा, दुख, कुंठा और अवसाद शब्दों में भीग-भीग कर बाहर आ रहा था। श्याम असमंजस में था कि उसे क्या कहे? क्या सांत्वना दे? अपने बचपन के साथी, सखा, मित्र के दुख और कष्ट को कैसे दूर किया जाए? लेकिन वह भारी मन से केवल सुनता जा रहा था। विजय शब्द-शब्द बोल रहा था! और, श्याम निःशब्द था। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि विजय के दुख, तकलीफ, उसकी आंतरिक पीड़ा को कम करने के लिए क्या मदद करे! वह मदद करने की स्थिति में था भी नहीं! उसे अपने मन में बहुत छटपटाहट होता अनुभव हुआ।

''लो बेटा चाय!'' विजय की मां की आवाज़ ने उसे चौंका दिया था। श्याम विजय द्वारा अपने घायल हृदय तथा दुखी आवाज़ में सुनाए जा रहे वृत्तांत से कुछ समय के लिए बाहर आ गया था। उसने चाय की प्याली को थाम लिया। ''विजय बेटे... तुम भी लो।'' मां ने दूसरा प्याला विजय के हाथों में हौले से थमा दिया था। ''तुम भी समझाओ न बेटा श्याम! यह बहुत अधिक हताश... निराश है। पता नहीं... हमें किस जन्म का दंड दे रहा है भगवान ...'' मासी की आंखें रोकते-रोकते भी भर आई थीं। श्याम से कुछ बोलते नहीं बना। वह देख रहा था कि विजय के हाथ में थमा कप कुछ हिलने लगा था। विजय ने कप को टटोल कर स्टूल पर रख दिया। कुछ देर के लिए खामोशी छा गई थी। खामोशी के इन पलों में श्याम विचारमग्न होकर धीरे-धीरे चाय के घूंट भरता हुआ विजय के बारे में ही सोच रहा था। विजय बहुत शर्मीला, संकोची किस्म का था। जब स्कूल में पढ़ता था, तो अन्य लड़कों के साथ अधिक घुल मिल नहीं पाता था। बात भी बहुत कम करता था। घर से बस्ता उठाया स्कूल, और स्कूल से सीधा घर। न कहीं रास्ते में खेलना, न ही किसी से लड़ना या झगड़ना! उसके बहुत कम दोस्त थे। परन्तु जो भी दोस्त थे, उनसे भी बहुत कम यानी ठीक तरह से नहीं घुल-मिल पाता था। वह बातूनी या वाचाल कभी नहीं था।

श्याम को लोगों ने बताया था कि अब विजय बिल्कुल भी चुप नहीं बैठता है। उसका मुंह अब हर समय चलता ही रहता है। बात-बात पर ठहाके मारता है। लेकिन उन ठहाकों के पीछे छिपे दर्द को बहुत कम लोग जान, समझ पाते थे। अब अगर अकेला हो, तो अपने आप से ही बातें करता रहता है। बात-बात पर अंग्रेज़ी बोलता है। घर के लोग उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते, तो उन पर बरस पड़ता है। किन्तु तुरंत ही फिर माफी भी मांग लेता है। श्याम यह सोच रहा था कि कोई अपनी लाचारी के कारण अपनी खीझ, गुस्सा, तनाव, अंदर की घुटन, बेचैनी, निराशा, कुंठा, हताशा को व्यक्त करना चाहे, तो क्या करेगा? ऐसा ही तो होगा?

चाय खत्म कर श्याम ने प्याला नीचे रख दिया। अपने मन को कड़ा कर उसने विजय से पूछ ही लिया। '' विजय एक बात पुछूं? बुरा नही मानना!''

'' हां... हां... कहो! ऐसी क्या बात है?'' विजय ने अपनी सहमति दी।

''तुम्हें ये सब करते हुए बहुत कष्ट होता होगा न... मेरा मतलब है... लेट्रीन... शोच के लिए जाना... दाढ़ी बनाना और ....'' श्याम ने वाक्य को अधूरा छोड़ दिया।

''हां श्याम! शुरू शुरू में तो बहुत परेशानी उठानी पड़ी। कभी कमरे से बाहर निकलते समय दीवर से टकरा जाता था। या फिर किसी सामान के साथ टकरा कर गिर पड़ता था। उस दौरान छोटा भाई हाथ पकड़ कर अंदर बाहर ले आता... और ले जाता था। गांव में कभी उत्सव... त्यौहार आदि हो... तो गांव वाले मुझे अपने यहां बुलाना नहीं भूलते। लेकिन जो भी हो... मेरी ज़िंदगी अब इस कमरे तक ही सिमट कर रह गई है। समझो... ज़िंदगी नरक बनकर रह गई है।''

श्याम चुपचाप उसके चेहरे पर उभरते, मिटते भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। वह जानता था कि उस चेहरे के पीछे आंसुओं का कितना सैलाब छिपा हुआ है। ज़रा से बादल उठेंगे तो बाढ़ आ जाएगी। यह घुटन, हताशा उसे कितने घाव, दर्द दे रहे होंगे? कितने लोग उसकी भावनाओं, दर्द को समझ पाते होंगे? बांट पाते होंगे? परन्तु श्याम ने प्रकट में कहा कुछ नहीं। चुप ही रहा। उसकी अपनी आंखें कब नम हो गई थीं, उसे इसका भी पता नहीं चला। श्याम ने भरे गले से अब जाने के लिए आज्ञा मांगी। ''कब वापस जाओगे?'' विजय ने पूछा ।

''सोच रहा हूं... तीन चार दिन बाद वापस लौट जाऊंगा।'' श्याम ने कहा।

''जाते समय मुझ से मिलकर जाना। फिर न जाने कब भेंट हो या फिर ...'' उसने एक ठंडी आह भरी। श्याम अब उठ खड़ा हुआ। विजय के दोनों हाथों को थामा और फिर धीरे से छोड़ कर बाहर निकल आया। विजय उसका बचपन का साथी और क्लासमेट था। उसको इस हालत में देखना उसके लिए अत्यंत कष्टप्रद और दुखदायी था। कहने को तो उसने कह दिया था कि शहर को वापस जाते समय उससे मिल कर जाएगा। परन्तु वह सोच रहा था, क्या वह फिर से विजय का सामना कर सकेगा? विजय की आंखें पथरा गई थी। आंखों की ज्योति धीरे-धीरे बुझ चुकी थी। शरीर में किसी आवश्यक तत्व। की कमी, तंत्र का फेल होना, किसी प्राकृतिक दोष अथवा कोई दैवीय प्रकोप? कोई तो कारण रहा ही होगा। घर के लोग कारण से अनजान थे। केवल अनुमान और अशंका ही जता रहे थे। इसे क्या कहें? मेडिकल साईंस के लिए चुनौती, अथवा अपनी अनभिज्ञता, नासमझी, अकर्मण्यता, घोर लापरवाही? लेकिन अब उनकी सोच दैवीय प्रकोप से आगे नहीं बढ़ रही थी। बेशक यह अंधविश्वास तथा दकियानूसी सोच थी। लेकिन घर-परिवार के सभी लोग, कुछ नजदीकी रिश्तेदार भी असमंजस, किंकर्तव्यविमूढ़, हैरान और परेशान थे।

समय अपनी निश्चित गति से भागता है। किसी के लिए रुकता नहीं है। उसे किसी की चिंता नहीं। चिंता और दुख उस समय होता है, जब समय हाथ से बहुत दूर निकल जाता है। और, हर वस्तु को अपने अंदर समेट लेता है। श्याम अभी भी पढ़ाई ही कर रहा है। विजय से मिले उसे छह महीने हो चुके थे। इस बीच विजय को एक बार फिर से घरवाले ऑपरेशन के लिए अस्पताल ले गए थे। डॉक्टरों ने इस बार और भी अच्छी प्रकार से जांच की। मगर उन्हें शायद अचानक अंधा हो जाने का कारण और इसका निदान समझ नहीं आ रहा था। इसलिए वे टाल-मटोल कर रहे थे। अन्ततः उन्होंने अपना पल्ला झाड़ लिया था। उन्होंने बस यही दोहराया, ''कुछ दिन और पुराने होने दो, तभी कुछ कर सकते हैं।'' संभवतः आनुवंशिक यानी जीन इसका कारण था। किसी ने इस पहलू पर ध्यान भी नहीं दिया था। वैसे, ऐसा कोई सोच भी नहीं सकता था। घरवालों ने मजबूर होकर दूसरे अस्पताल में दिखाया। वहां भी यही जवाब मिला। लाचार होकर वापस घर लौट आए थे। इतने भी कंजूस, निर्दयी नहीं थे कि बेटे का जीवन दांव पर लगा दें। परन्तु डॉक्टरों ने हाथ खड़े कर लिये थे। वे डॉक्टरों और कुदरत के इस खेल के आगे लाचार, विवश थे। साधन, सम्पन्न होने के बावजूद आदमी परिस्थितियों के आगे कितना बेबस हो जाता है! कुछ न कर पाने की मजबूरी और लाचारी, उनकी आंखों में बस गई थी।

सब ओर से निराश होकर आदमी आखिर में भगवान की शरण में पहुंचता है। उन सारे टोने-टोटके जिनके लिए मन में थोड़ा सा भी विश्वास, आस्था हो, अपनाने, आज़माने लगता है। फिर तो देशी इलाज, झाड़-फूंक कराया गया। पूजा-अर्चना की। देव-देवी से पूछ रखी। मंदिरों में गए। गूर-भाटों को बुलाया। ओझा-गुनियों के झांसे में आए। पोंगा-पंडितों के जाल में फंसे! हवन, यज्ञ, पाठ-जाप कराया। दान-दक्षिणा बांटी। परन्तु कुछ असर नहीं हुआ। समय के

साथ समझौता करने के अतिरिक्त अब और कोई चारा ना दिखा? अपने विश्वास कहें अथवा अंधविश्वास के कारण उपजी चिंताओं, ग्रहों का निवारण करने के विभिन्न उपायों को अपनाने के बावजूद कोई शुभ संकेत या उत्साहजनक परिणाम हासिल नहीं हुआ था। विजय मानसिक संताप से तिल-तिल कर गल रहा था।

श्याम घर में बैठा अपनी परीक्षा की तैयारी में जुटा था। शाम के लगभग चार बजे के आस-पास का समय रहा होगा। रात से ही मूसलाधार बारिश हो रही थी। अप्रैल के महीने में मूसलाधार बारिश होना अचंभे की बात थी। श्याम अपनी पुस्तक में व्यस्त था। सहसा उसे दरवाज़े पर खट-खट की आवाज़ सुनाई दी। उसने किताब को नीचे रखा। पैरों में चप्पल डाल दरवाज़े की ओर बढ़ा। फिर दरवाज़े के पल्लों को बाहर की तरफ खोल दिया। बाहर पड़ोसी का बेटा था। उसने प्रश्न वाचक दृष्टि से लड़के की ओर देखा?

''भईया! यह पत्र आपको पोस्टमेन देकर गया है। आप उस समय घर पर नहीं थे। इसलिए हमारे पास दे दिया।''

''अच्छा...'' उसने लड़के से पत्र ले लिया। पत्र गांव से भाई का था। उसने किवाड़ बंद किया। पत्र को तुरंत खोला और खड़े-खड़े पढ़ने लगा। ज्यों-ज्यों पत्र पढ़ता जा रहा था, उसका चेहरा उतरता जा रहा था। आखिर में पत्र उसके हाथ छूट कर नीचे फर्श पर गिर गया। पत्र की अंतिम पंक्ति में लिखे एक-एक शब्द उसके हृदय पर चोट कर रहे थे। लिखा था, विजय ने अपने अंधेपन और जीवन से अज़िज आकर मौत को गले लगा लिया है। आंख का इलाज हो भी जाता, परन्तु उसका सब्र चुक गया था। उसके धैर्य ने जवाब दे दिया था। उसमें जीवन के प्रति घोर निराशा भर गई थी। श्याम की आंखों से दो बूंद आंसू गिर कर पत्र के ऊपर गिर पड़े। पत्र मानो उसे मुंह चिढ़ा रहा था।

कहानी को पढ़ते-पढ़ते भावावेश में मेरी अपनी आंखें कब भीग गई थी, मुझे ज्ञात ही नहीं हुआ। हालांकि यह स्पष्ट था कि कहानी कच्ची कलम और शायद कच्ची उम्र में लिखी गई थी। कहीं भी हास-परिहास, रास-रोमांस, लुका-छिपी, नाम-बदनाम, मैत्री-शत्रुता, उक्ति उदाहरण, उपमा- विशेषण कुछ भी तो नहीं था! बिना मिर्च, मसालों के साफ और स्पष्ट बयानी की सपाट कहानी! लेकिन शायद सच्ची! एक संवेदनशील और चढ़ती उम्र के नौजवान की बदनसीबी तथा उस दौरान के हालातों का खाका था। सब कुछ होते हुए भी ज़िंदगी कैसे धोखा दे देती है, समय कैसे करवट बदलता है? कैसे एक बेबस किन्तु निष्कलुष युवा हालात के हाथों में मिट्टी बनकर, मिट्टी में मिल जाता है। इन्हीं दुख, वेदनाओं, स्थितियों के आगे असहाय पड़ जाने, विशेषकर गांवों में, को बिना किसी लाग लपेट के सपाट बयानी की कहानी थी।

वैसे, मैं सोच में पड़ गया था कि विजय की आंखों से अचानक रोशनी चले जाना वंशगत कोई कारण रहा होगा? जीन का प्रभाव? आनुवंशिकी या उसके पूर्वजों, पुरखों द्वारा दिये गंभीर रोगों का पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहने का अभिशाप था? अभिशापित पूर्वजों की यह कैसी देन थी? जिसे बस, ढोते जाना है, सहते जाना? अथवा उस समय के डॉक्टर उतने कुशल नहीं थे? या चिकित्सा, उपचार के तकनीक उतने उन्नत नहीं रहे होंगे? चालीस-पचास वर्ष पूर्व यह बिल्कुल संभव था? मैं सोचने लगा, विजय का जिगरी दोस्त कौन था? कहानी लेखक या कोई और? इस कहानी में लिखी तारीख के बाद एक नई पीढ़ी आ गई। एक पीढ़ी प्रौढ़, बूढ़ी हो गई। और, पुरानी पीढ़ी दुनिया से ही विलीन हो गई। तब और अब! इतना लंबा अंतराल! यह स्वभाविक ही है। लेकिन इस लंबे अंतराल के दौरान स्थितियां, परिस्थितियां, विचार, विषय, तकनीक और जीवन में सुख, दुख, तकलीफों के रूप, प्रकार कितने बदल गए? तकलीफें कम हुई या अधिक बढ़ गई? क्या इनकी परिभाषाएं बदल गई हैं? इन सबके अपने-अपने पहलू हैं, दृष्टिकोण हैं। जीवन के प्रति अपने-अपने अनुभव हैं, अपने-अपने विश्वास और आस्था हैं। खैर! मैं इन में तुलना करने को नहीं कहूंगा। स्थितियां खुद व खुद बयान कर देंगी।

नाग मंदिर कॉलोनी, शमशी, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश - 175126
Mob-No- 8447037777

दरिया दिली और तंग दिली के सितम

सतीश कुमार लोप्पा

आज कल लाहुलियों के ब्याह-शादियों में खूब दरिया दिली के दर्शन होते हैं, खासकर उन शादियों में जो कुल्लू में आयोजित हो रही हैं। महंगी से महंगी शराब और बीयर पिलाने की होड़ सी मची है। घुरे गीतों में यदा कदा वर्णन आता है- ''सरा सूरे री कुला फेरी दीती'', वह सच में चरितार्थ होता देखा जा सकता है। गरीब-गुरबा यह सब देख कर हतप्रभ है। करे तो करे, क्या करे और कैसे करे? शराब पिलाने की इस प्रतियोगिता को कहां तक आगे ले जाया जाए, यह हम सब के सामने यक्ष प्रश्न है। कहीं न कहीं तो सीमा बांधनी होगी ताकि समाज का अमीर और गरीब तबका एक समग्र समुदाय के रूप में साथ-साथ चल सकें। बेहतर होगा कि शराब के किसी अफोर्डेबल ब्रॉंड तक सीमा तय की जाए और बीयर पर पूरा प्रतिबन्ध लगा दिया जाए क्योंकि बीयर बहुत ही अधिक खर्चीला शौक है।

मांस, मछली, चिकन के नाना पकवानों और हलवाई की पूरी दूकान सजाने की जो रवायत सी चल पड़ी है वह भी हमारे अनावश्यक आडम्बरपूर्ण दिखावे की मानसिकता की ओर इशारा करती जान पड़ती है। वर्ना दस आईटम की जगह चार आईटम से भी अच्छा गुज़ारा चल सकता है। ऐसा लगता है जैसे खान-पान की सूची हम लोग नहीं बल्कि केटरिंग वाले तय कर रहे हैं। 'ज़माने को दिखाना है' की मानसिकता के वश होकर हम खुश हैं और उधर मैरिज-हाल और केटरिंग वाले बड़े चाव से लार टपकाते हुए हमारे जेबों का खूब दोहन कर रहे हैं। यह आत्मचिंतन का विषय है।

आजकल ब्याह-शादियों में एक और दानव आ घुसा है, वह है डी. जे.। इस के ''डिन्झः-डिन्झः' पर किसी का नियंत्रण नहीं। जब डी. जे. रात-दिन ऊंची आवाज़ में बजता रहता है तो समारोह में बैठे रहना मुश्किल हो जाता है। न खाने-पीने का स्वाद, न बातचीत का स्वाद! चार बन्दे बैठ कर बातचीत कर भी रहे हों तो यह पता नहीं चल पाता कि सामने वाला क्या बोल रहा है। संगीत के साथ दूसरी चीज़ें करना तभी संभव है जब संगीत मद्धिम, मधुर और कर्णप्रिय हो। ऊंची आवाज़ में बाजा सिर्फ नाचने के लिए मुफीद हो सकता है। इस की जगह पारंपरिक वाद्य-वृन्द को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे हमारी प्राचीन वाद्य-परम्पराएं भी जीवन्त बनी रह सकेंगी और आमंत्रित लोग भी बीच-बीच में सांस ले सकेंगे।

विवाह कार्ड में ''शराब न लाएं'' की इबारत अब पक्की हो गई है। हम सब चाव से पालन भी कर रहे हैं। इस में भले ही सब को एक प्रकार की सुभीता हो गई हो, वहीं इस का एक नकारात्मक सांस्कृतिक पक्ष भी है। यह एक तरफा तो है ही। हमारे बुजुर्ग कहा करते थे- ''करछोल छुङमरतङ साह् इबि''। छुङमर शुभता का और भरा हुआ पात्र पूर्णता का प्रतीक है।हम उस घर के शुभ कार्य में अपनी शुभता और पूर्णता के प्रतीक और भाव दोनों साथ ले कर जाते थे। अब हम 'खाली' जाते हैं। खाली मतलब खाली। हां, एक बड़ा सा खाली पेट ज़रूर साथ लेकर जाते हैं ताकि बहुत सारा मांस और मदिरा उस में भरा जा सके। उस घर की शुभता और पूर्णता में हमारी शुभता और पूर्णता के भाव का जुड़ाव खत्म हो गया है। भावना के स्तर पर हम छोटे हो गए, पेट बड़ा हो गया। यह सांस्कृतिक क्षरण है। हमने इस संदर्भ में 'करछोल-छुङमर' की मूल अवधारणा को खो दिया। हम चाहे तो इसे सुल्टा सकते हैं। हमें विकल्प देना चाहिए। शराब की जगह क्या? दूध की बोतल, जूस की बोतल, पानी की बोतल! कुछ भी हो सकता है। यह हम सब को सोचना है।

एक और बात जो मुझे कचोटती है, वह है दाह संस्कार के समय लोगों का शमशान से समय से पहले भागना। यह खासतौर से बौद्ध समुदाय के लिए कह रहा हूं। अन्य समुदाय के लोग 'भट' से क्रिया करवाते हैं, उन का अनुष्ठान काफी संक्षिप्त रहता है। बौद्धों में लामा शमशान में आकर चिता की अग्नि में हवन करता है और बाकायदा हव्य आदि अग्नि को समर्पित किए जाते हैं। जब तक यह हवन पूर्ण नहीं हो जाता, दाह संस्कार सम्पन्न नहीं होता। मैं अक्सर देखता हूं कि लोग लामा द्वारा हवन पूर्ण होने से पहले ही धर्म लकड़ी फैंक कर यह कहते हुए निकल जाते हैं कि कपाल मोचन हो गया। यह धर्म का भी अपमान है और धर्म गुरु लामा का भी। मृतक का तिरस्कार तो है ही। जब तक लामा अन्तिम आहुति अर्पित नहीं कर देता, तब तक मेरी और आप की धर्म लकड़ी का क्या अर्थ? हमें इसे अपने संदर्भ में समझना चाहिए। खाली कपाल का फूट जाना ही दाह क्रिया की पूर्णता नहीं है। अतः कम से कम अनुष्ठान कर्त्ता लामा जी के आसन छोड़ने तक हमें शमशान से भागना नहीं चाहिए। आखिर ऐसे मौके पर भी जल्दी घर जा कर क्या कीजिएगा? आज नहीं तो कल हमें भी यहीं आना है।

आइए, मिल कर आत्म चिंतन करें!!

लेखकों से निवेदन

लेखक बन्धु/भगिनियों से निवेदन है कि आप चन्द्रताल के आगामी अंकों के लिए अपनी अप्रकाशित कविता, कहानी, लेख आदि प्रकाशनार्थ भेज कर हमें अनुगृहीत करें। लेख के साथ अपना तथा लेख के विषय से सम्बन्धित फोटो भी अवश्य भेजने की कृपा करें ताकि पत्रिका के गेटअप को और बेहतर बनाया जा सके। धन्यवाद।

-सम्पादक

चाढ़ा बामन कन्या का विवाह

के० अंगरूप लाहुली

लाहुल के लोकगीतों और गाथाओं के अध्ययन से हमें इन दो बातों का स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है कि यहां के इन लोकगीतों और गाथाओं में वीर कथात्मक गाथाओं का नितांत अभाव और आकार में छोटी-छोटी होती हैं। प्रेम कथात्मक और विवाह आदि संस्कारात्मक गाथा यहां पर सर्वत्र पाई जाती है। निम्न संस्कारात्मक लोक गीत (गुरे गीत) एक बामन कन्या के जीवन उत्सर्ग का कथानक है।

दाम्पत्य जीवन का शिलान्यास ही पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन से समारम्भ होता है। इस प्रकार पति-पत्नी के सम्बन्ध से संसार चक्र चलता है। विवाह दो डेडीकेशन यानी समर्पणों का संगम होता है। अतः आपसी सहयोग और प्रेम की इसमें अहम भूमिका होती है। क्योंकि स्त्री और पुरुष दोनों विभिन्न परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं। उनके आचरण और स्वभाव भिन्न होते है। इसलिए उन्हें एक-दूसरे से पटरी बिठाने के लिए सही सोच और धीरज की आवश्यकता होती है। इसमें पुरुष विवाह सूत्र में बंधकर अपनी स्वतंत्रता गवा बैठता है तो दूसरी ओर स्त्री ससुराल में पहुंचकर अपने माता-पिता और परिजनों के लाड़-प्यार से वंचित हो जाती है। जैसा कि लाहुल घाटी की ही दो प्रमुख सरितायें चन्द्र और भागा जो सूर्य और चन्द्रताल की संतान कहलाती हैं। तान्दी नामक स्थान पर संगमन होकर तथा अपने अस्तित्व से परिवर्तित होकर दरिया चनाब का नाम धारण कर प्रवाहित होती हैं, जो पंजाब की पांच प्रमुख नदियों में से एक है। ठीक उसी प्रकार दाम्पत्य जीवन भी किसी वंशावली की वेदी पर दो पूरक तत्व के रूप में संयुक्त होकर अपने शैशव जीवन का अतिक्रमण कर जाते हैं। तो भी उस आत्म समर्पण में जीव के मधुर सपनों का महल और अनेकानेक इच्छा-आकांक्षायें सन्निविष्ट रहती हैं। अतएव पुरुष अपने जीवन में विविध विपदाओं को सहर्ष सह लेता है तो नारी अपने माता-पिता और घर के लाड़-प्यार का परित्याग कर ससुराल की कुल वधू बनने के लिए तत्पर हो जाती है। परन्तु नारी सुलभ लज्जा के कारण वह ससुराल के अनजान लोगों के बीच में जाकर अजनबी सी, कुछ सहमी-सिमटी सी हो कर रहती है। कुछ सोचती है, पर मुंह से बोलने में सकुचाती है। तो भी ढेर सारी मधुर कामनाएं और नाना जिज्ञासा भरी बातें उनके मन को गुदगुदाती हैं। इसलिए नारी त्याग की मूर्ति और भावनाओं का भण्डार कहलाती है। गृहस्थ एक ऐसा निकाय है, जिसमें पति-पत्नी का व्यक्तिगत सहयोग अपेक्षित होता है। पति का गृहस्थ में विशिष्ट स्थान होता है। इसके अभाव में गृहस्थ का बिगड़ना निश्चित होता है। गृहस्थ के बनने बिगड़ने का दायित्व उसी पर निर्भर होता है। पत्नी को घर की आधारशिला माना जाता है। गृहस्थी की आन्तरिक सुदृढ़ता उस पर अवलम्बित होती है।

लाहुल की पटनवादी के वारी गांव निवासी युवा कलमकार श्री सतीश कुमार लोप्पा के शब्दों में प्रस्तुत गुरे-गीत का प्रधान पात्र यानि नायक ओल्यास के राणा और उनका गांव हिमाचल प्रदेश की भरमौर तहसील के अतंर्गत खणी नामक स्थान के समीप अवस्थित है, कहते हैं।

चाढ़ा बामन कन्या लाहुल की पटनवादी के मडुङ गांव की रहने वाली एक सम्पन्न घराने की सुंदर-सुशील एवं अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी। उसके सुव्यवहार से गांव के सभी स्त्री-पुरुष उससे प्रसन्न रहते थे। अतः गांव के वय प्राप्त बड़े बुजुर्ग लोग उसे स्नेह पूर्वक चाढ़ा यानि प्यारा बामन कन्या कह कर पुकारा करते थे। उसकी शोहरत भी दूर-दूर तक फैली हुई थी। अनेक घराने उसे अपनी कुलवधू बनाने के लिए लालायित रहते थे। ओल्यास (=आञ्चल) के राणा परिवार ने भी चाढ़ा बामन कन्या की गुणकीर्ति सुन रखी थी। इस प्रकार एक रसज्ञ लोक गीतकार सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त परम लावण्यमय बामन कन्या के विवाह सम्बन्धी कथा को गुरे-गीत के माध्यम से निम्न प्रकार प्रस्तुत करते हैं-

1. ओ-ल्यासेरी राणा ए, बरा माँगूणे आये।।

एक समय ओल्यास यानी आंचलिक श्रेत्रीय प्रमुख यानी राणा कन्यादान मांगने के लिए अपने नज़दीकियों के साथ मडुङ गांव पहुंचे। यह गांव वर्तमान में उदयपुर उप-मण्डल से 4/5 किलो मीटर की दूरी पर चम्बा की ओर दरिया चनाब की दायीं उपत्यका पर स्थित भूमिहार क्षत्रियों और बामनों की एक छोटी सी, परन्तु सुरम्य बसती का नाम है। ओल्यास से मडुङ गांव पहुंचने के लिए सरल एवं सुगम पर्वतीय मार्ग मैज़ङ क्षेत्र के पश्चिमी पहाड़ी दर्रे से हो कर था और आज भी है। राणा और उनके सहयोगियों ने भी मडुङ पहुंचने के लिए उसी मार्ग को चुना था। इस प्रकार वे अपने गांव खणी से चल कर -

2. ए एकीना ध्याड़ी, अल्या-सा गोटे।।

एक ही दिन में अल्यास के गोट यानी पर्वत के छोर पर जा पहुंचे।

3. ए दूजीना ध्याड़ी, जो-ता लांघाये।।

दूसरे दिन वे जोत यानी पर्वत-शृंखलाओं को लांघ कर एक गहरी तराई क्षेत्र में पहुंच गए।

4. ए त्रीजीना ध्याड़ी, मडुंगे-री सारे।।

तीसरे दिन वे सभी अपने गंतव्य स्थान मडुङ नामक बामनों की बसती में पहुंच गए। सभी ने अपनी टोपियों को गेन्दा आदि मोहक पुष्पों से सजा रखे थे। राणा के सहयोगियों में कुछ बुजुर्ग वर्ग के लोग भी सम्मिलित थे।

5. ए ठाहरीणा बीणीए, चाढ़े-री घारे।।

राणा सहित उनके सहयोगियों ने सर्वप्रथम गांव के प्रमुखों का ठौर-ठिकाना पूछकर तथा उनसे राय-मशविरा लेकर, वे चाढ़ा बामन कन्या के घर की ओर गमन करने लगे।

6. ओ-ल्यासेरी राणाए, चाढ़े-री घारे।।

ओल्यास क्षेत्र का प्रमुख राणा एक संकोची व्यक्ति थे। इस प्रकार वे चाढ़ा बामन कन्या के निवास की ओर गमन करने से पहले-

7. ए हाण्डीना फेरीए, चाढ़े-री घारे।।

हीला-बहाने के साथ गांव का एकाध बार फेरा यानी चक्र लगाकर तथा अन्त में चाढ़ा बामन कन्या के घर बड़ी शालीनता के साथ प्रवेश कर गए।

8. ए जरा भीमी रामाए, आदू-रा राखी।।

क्षेत्र पति राणा और उनके सम्बन्धियों को अपने घर आते देख कर बामन कन्या का वृद्ध पिता भीमी राम ने उन आगंतुकों का औचित्यपूर्ण आदर-सत्कार के साथ अगुआनी की। क्योंकि राणा की शख्सीयत से उस क्षेत्र के सभी लोग परिचित थे।

9. ए जरा भीमी रामाए, पूछू-णे लागी।।

खान-पान आदि अतिथि-सत्कार के पश्चात् बामन कन्या का पिता जरा-ग्रस्त भीमी राम आगंतुक राणा और उनके सहयोगी वृद्ध से बड़ी उत्सुकतापूर्वक, पर नम्रभाव के साथ आगमन का उद्देश्य पूछने लगा कि-

10. ओ-ल्यासेरी राणाए, किजी कामे आये।।

हे! क्षेत्र पति ओल्यास के राणा आप और आप के इन सहयोगियों को हमारे घर किस प्रयोजन से तथा किस कार्य हेतु पधारना हुआ?

11. ए जीया मेरे सहिबाए, बरा-मांगूणे आये।।

इस पर राणा बड़े सौमनस के साथ कहने लगा-हे! साहब, आप दीर्घ जीवी हों। मैं और मेरे यह सहयोगी वृन्द एक प्रबल इच्छा लेकर आपके यहां बरा यानी कन्यदान मांगने के लिए आये हैं। आशा है कि आप हमें निराश नहीं करेंगे।

12. ए तेण्डूणे धीयाए, बरा-मांगूणे आये।।

हां-हां, हम लोग आप के यहां आप की प्यारी धीया बेटी का रिश्ता (=नाता) मांगने के लिए आए हैं।

13. ए जरा भीमी रामाए, अपु राजी भूये।।

बामन कन्या के पिता वृद्ध भीमी राम ने जब अपनी इकलौती बिटिया की सगाई की बात सुनी तो वह अपनी बेटी को ब्याह में देने के लिए राज़ी तो हो गए, परन्तु लोक लज्जावश तत्काल मुंह से हां या ना कुछ नहीं बोला।

14. ए जरा भीमी रामाए, शागू-णा कीती।।

कुछ क्षण अन्यमनस्क सा रह कर तथा कुछ सोचने के पश्चात् कन्या के पिता वृद्ध बामन भीमी राम ने रिश्ते की बात करने से पूर्व अपने कुल देवता की पूजा-अर्चना की।

15. ए धीआ धूनीयाए, ब्या-हैना दीती।।

उसके पश्चात् राणा आदि वर पक्ष के लोगों के साथ रिश्ते की बात करके अपनी इकलौती धूनी बेटी को ब्याह में देने का वचन दे दिया।

16. ए धीआ धूनीयाए, परू-देशा ब्याहे।।

लोगों के कानों जब यह खबर पहुंची कि चाढ़ा बामन कन्या धूनी बेटी की सगाई परदेश में हो गई है, तो गांव की सखी-सहेलियां और यहां तक की गांव के बुजुर्ग वर्ग के सभी स्त्री-पुरुष चिन्तित हो गए। वे कहने लगे कि चाढ़ा बामन कन्या के पर देश चले जाने से गांव में सूनापन छा जायेगा, क्योंकि वह गांव की शोभा है।

17. ए त्रीजी बरूषेए, ब्याह-ओटो कीती।।

बामन भीमी राम और उनके रिश्तेदारों के कन्या के विवाह की तैयारी और उधेड़ बुन में तीन वर्ष का समय यूंही निकल गया। अन्ततः एक दिन ब्याह-ओटो यानी कन्यादान का रस्म अदा करने का वक्त आ ही गया तो प्रिया धूनी बिटिया का ब्याह करवा दिया गया।

18. ओ-ल्यासेरी राणाए, पागू-ड़ी डेरे।।

बरात की वापसी के समय ओल्यास क्षेत्र का राणा वंशज यानी कन्यावेदी (=जमाता) अपनी पगड़ी ज़रा सी टेढ़ी-तिरछी सी करके बड़े शान-बान के साथ आगे-आगे चलने लगे।

19. ए लाड़ीना धूनियाए, पाली-णी झूले।।

उनकी लाड़ी यानी नववधू पत्नी जिस का नाम धूनी था। पालकी में बैठ कर झूमती-झामती अपने पति का अनुसरण करने लगी।

20. ए यानीना धूनीयाए, रोलू-णे लागे।।

पिता भीमी राम अपनी बेटी को बहुत प्यार करते थे। लाड़-प्यार के

कारण वह थोड़ी जिद्दी सी भी हो गई थी। विदाई के समय वह सयानी रूपसी भीमी राम की धूनी बिटिया, घर का आंगन और अपने माता-पिता से अपने को बिछुड़ते देख, सुबक-सुबक कर रोती हुई कहने लगी-

21. ए छूटीयो मेण्डूणे, माई-ना बापू।।
ओह! मेरे अभ्युदय चाहने वाले माता और पिता पीछे छूटे जा रहे हैं।

22. ए छूटीयो मेण्डूणे, भाया-ना बैह्णी।।
मेरे प्रिय भाई और सौतेली सगी बहनें भी तो पीछे छूटे जा रही हैं।

23. एक छूटीयो मेण्डूणे, सांगा-ना सौगी।।
अब तो मेरे गांव की सखी और सहेलियों की संगत भी छूटी जा रही है।

24. ए छूटीयो मेण्डूणे, माडुंगे-री हाऊंसे।।
वह ज़ोर-ज़ोर से रोती हुई कहने लगी कि अब तो मेरे मडुङ गांव की हंसी-खुशियों के दिन भी पीछे छूट गए। वह खुशनुमा दिन अब मुझे फिर से नसीब नहीं होगा। ऐसा सोच कर वह इतनी उदास हो गई कि उसे अब यह आभास सा होने लगा कि अब लौट कर अपने बचपन की सखियों के संग माता-पिता के आंगन में मुझे किलकारी भरी क्रीड़ा करने का मौका भी फिर से मिलेगा या नहीं। वह यह भी सोचने लगी कि अब तो मेरे लिए घर का आंगन परदेश हो जायेगा। धूनी बिटिया को उन गौओं और बछड़ों की भी दुःखद स्मृति हुई, जिन्हें वह गऊ-ग्रास खिलाया करती थी।

25. ए माई-ना बापूए, शिखा-बुद्धि दीती।।
माता और पिता धूनी बिटिया के विलाप पर विह्वल होकर सांत्वना के रूप में सीख और सलाह देते हुए कहने लगे-

26. ए रोये मातु धीआए, भले-जोगु ब्याहये।।

27. ए रोये मातु धीआए, सुठाह-री ब्याहये।।
हे! बेटी मत रोओ। यह रोने का समय नहीं है बेटी। तेरा विवाह एक अच्छे भले वंशज के साथ योग हो रहा है। उस वंश और ओल्यास (आंचल) की भूमि को सभी लोग मुक्त कण्ठ से सुठाहरी यानी सुरम्य स्थान कह कर प्रशंसा करते हैं। अतः ऐसे वंश और स्थान पर तुम्हारा ब्याहना हमारे बामन कुल के मान-मर्यादा के अनुकूल गौरव की बात है। बेटी! याद रखो। अपने घर में जो स्थान मां-बाप का होता है, ससुराल में वही स्थान सास-ससुर का होता है। अतः हे बेटी! उसी सेवा भाव से उनकी सेवा-चाकरी में लग जाना। बेटी! सास के परम अनुभवों की बातों को नुक्ताचीनी न मान कर आवश्यक परामर्श समझना। वह तुम्हारी जीवन रूपी पथ के लिए प्रदीप का काम देगा।
एवमेव कन्याधन के रूप में-

28. ए बापूरे स्वाजाए, शिरा-शावे प्रौजा।।
पिता भीमी राम की ओर से स्वाजा यानी सौगात (उपहार) में फीरोज़े का एक सौ दाने वाला शिरोभूषण दिया गया।
फीरोज़े का शिरोभूषण यानी फीरोज़ी मुकुट जिसे लाहुल की पटनवादी में इसे 'दोगर' और गहारवादी में 'यु-थोद्' कहते हैं। महिलाएं इसे शुभ अवसरों और शोभा यात्राओं में सिर पर धारण कर आराध्य देव-देवियों की पूजा अर्चना करने में प्रयोग करती हैं।

29. ए माई-रे स्वाजाए, गड़दा-गड़ा सीरी।।
और मां की ओर से स्वाजा (उपहार) के रूप में चांदी का सुन्दर एवं घना गुन्था हुआ एक जोड़ा गजर यानी कलाई पर पहनने का एक गहना दिया।

30. ए भाई-रे स्वाजाए, शवे-या रूपये।।
भाई की सौगात एक सौ रुपये।

31. ए बैहणी-रे स्वाजाए, दसू-वा रूपये।।
सौतेली बहन की सौगात दस रुपये।

32. ए सौढ़े-रे स्वाजाए, पंजू-वा रूपये।।
माता का भाई यानी मामू ने स्वाजा-उपहार के रूप में पांच रुपये दिए। इस प्रकार स्वजनों से प्राप्त सभी कन्याधन को मिलाकर चाढ़ा बामन कन्या धूनी बिटिया को चांदी के एक सौ पन्द्रह टके मिले।

33. ए माई-रे झुण्डे, संगे-याना त्यारी।।
अब चूंकि धूनी बेटी स्वजनों से विदाई लेकर अपने ससुराल की ओर जा रही थी। इस लिए मातृ पक्ष के लोग धूनी बेटी को पहुंचाने के लिए, उनके साथ जाने के लिए सभी भाई तैयार हो गए और सहेलियां धुनी सखी से मिलकर कहने लगी, हायरे, ब्रह्मा ने नारी का सृजन ही क्यों किया?

34. ए भाई-रे झुण्डे, संगे-याना त्यारी।।
कन्यादान के पश्चात् कन्याओं को ससुराल तक पहुंचाना भाई-बहिन आदि रिश्तेदारों का नैतिक दायित्व होता है। कहीं ऐसा न हो कि गुण्डा-गरदी करने वाले कन्याओं का बीच में अपहरण कर लें। इन आशंकाओं से भाई-भतीजे और परिजनों का झुण्ड भी बारात वालों के संग में जाने के लिए तैयार हो गए।

35. ए देवी भौवानीरे, च़ारू-नापा लाड़ी।।

36. ए देवी भौवानीरे, शैषा-ना लोड़ी।।
चाढ़ा बामन बिटिया धूनी अब अपने घर का स्नेह और माता-पिता का लाड़-प्यार तथा आस आदि परित्याग कर भावी जीवन यापन करने के लिए अपने पति देव के घर जा रही थी। उसको लगा कि

इस पुरुष प्रधान समाज का क्या भरोसा कि कभी मेरे पति मुझे ठुकरा कर घर से निकाल न दे, तो ऐसी अवस्था में, मैं दो-दो घर का होते हुए भी बेघर की हो जाऊंगी। क्यों न मैं अपने कुल देवी दुर्गा मां से आशीर्वाद मांग लूं। इसी चिन्ता और भावी विपत्तियों से उबरने के लिए, वह विदाई के समय अपनी आराध्य देवी भवानी (दुर्गा) का चरणोदक और शेष (अवशिष्ठ) यानी प्रसाद मांगने लगी। साथ ही वह लाड़ली बिटिया छटपटाती, बिलखती आंसुओं की झड़ी बरसाती रूद्ध कण्ठ से करुणामय स्वर में अपने बापु से कहने लगी। बापु जी! मेरी गुड़िया घर में रह गई है। उसे किसी के साथ मेरे पास भिजवा देना।

37. ए द्वारू अगोरू, झा-माणा स्वारी।।

38. ए धीआ धूनियाए, झा-माणा झूले।।

घरके फाटक के सामने चाढ़ा बामन कन्या की रवानगी के लिए फूल-मालाओं से सजी सवारी यानी डोली आदि साज-बाज पहले से ही तैयार थी। वह धूनी धीआ उस पर बैठकर झूमती-डोलती हुई ओल्यास की राह अभिमुख हो गई। गांव की नर-नारियां चाढ़ा बामन कन्या की विदाई बेला देखने के लिए उमड़ पड़ी। उनके कण्ठ इस विदाई के समय गद्गद हो कर नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। इससे वातावरण उदासी से भर गया वो दृश्य और भी करुण बन गया।

39. ए धीआ धूनीयाए, ब्याह-ओटो कीती।।

40. ए धीआ धूनीयाए, परू-देशा ब्याहये।।

इस प्रकार एक ओर इकलौती धूनी बिटिया के पिता भीमी राम ने विवाह की सारी रस्म अच्छी तरह अदा की तो दूसरी ओर धूनी बिटिया भी साथ जियें तो साथ मरेंगे, इसी संकल्प के साथ पैतृक गृह की मोह-माया छोड़ कर विवाह के नाम पर परदेश यानी दूसरे कुल की वधू बन कर चली गई।

गांव के सभी लोगों की लाड़ली, प्यारी, चाढ़ा बामन बिटिया के परदेश चले जाने से मडुङ गांव में एक तरह से सूनापन छा गया। मनुष्य तो क्या गांव के वृक्ष-पौधे और यहां तक घर की दीवारें तक बिछोह में रो उठीं।

अबला जीवन के आत्म-उत्सर्ग की यह अत्यन्त मार्मिक एवं वेदनापूर्ण बेला होती है। वह अपनी मां का घर-आंगन छोड़ दुल्हन बन एक नये घर में प्रवेश करती है तो अपने पति यानी जीवन साथी के बाद उसका सम्पर्क सब से अधिक सास के साथ होता है। वह उस नये घर के अनजान लोगों के साथ अजनबी सी, सहमी-सिमटी सी होकर रही है। वह बहुत सोचती है, पर खुलकर बोलने में शरमाती है। अतः पशुवत् मूक बन कर रहती है, तथा एक दासी की तरह परिवारजनों की सेवा-चाकरी करती है। इसी लिए कहा जाता है कि नारी के आत्म-उत्सर्ग की क्षमता अद्भुत होती है। जिस पर उन मासूम बालाओं को उनके स्वजन नसीहत के तौर पर पहले ही कह देते हैं कि देखो महिलाओं को ससुराल जाने के पश्चात् वहां से उनकी अर्थी ही बाहर आनी चाहिए, यानी छोटी-छोटी बातों से नाराज़ होकर अपने मायके आने की प्रवृत्ति नहीं बना लेनी चाहिये। स्वजनों के अपनी बेटियों को पराया धन समझने की यह जघन्य मानसिकता कितनी आपराधिक होती है। इसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

गवैया-अवकाश प्राप्त मास्टर श्री लाल चन्द।
गांव तन्दी, ज़िला लाहुल-स्पीति
रिकार्डिंग-शाशनी निवास, मनाली, जून 1974
अनुवाद- जनवरी माह सन् 2004

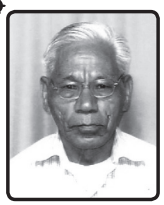

लाहुल में मनाए गए अन्तिम पूंई के त्यौहार का विवरण

तोबदन

लाहुल में स्वङ्ला वर्ग के परिवारों में पितरों की पूजा का संस्कार मनाने की एक प्रथा प्रचलित थी। यह संस्कार उत्सव की तरह बहुत बड़े स्तर पर मनाया जाता था। स्थानीय परम्परा में इसे पूंई कहते हैं। लाहुल में इस प्रकार का अन्तिम उत्सव सन् 1944 में गांव शांशा में टेंटा के घर में मनाया गया था। इस परिवार के डोला राम इस त्यौहार के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं।

डोला राम आजकल मनाली में रहते हैं। उनकी उम्र जून सन् 2017 में 91 वर्ष और 6 माह हो गई थी। उनके घर में पूंई का यह आखिरी आयोजन था। इससे पहले रूड़िंग गांव में रूड़िंगवा के घर में 1940 में यह उत्सव मनाया गया था। 21 जून 2017 को डोला राम के साथ बात हुई। वे कान से थोड़ा ऊंचा सुनते हैं। वैसे वे पूर्णतया स्वस्थ और चुस्त हैं। वे बिना किसी सहारे के तेज़ चलते हैं। उन्होंने अपनी भाषा, स्वङ्ला, में बात की। रुड़िङ गांव के रूड़िङ्बा के मास्टर बुद्धराम, जिनके घर इससे पहले सन् 1940 में पूंई मनाया गया था, जिसको इन्होंने देखा था परन्तु बहुत छोटा होने के कारण कुछ याद नहीं है। वे भी इस बातचीत में साथ थे। नीचे डोला राम जी से बातचीत का वर्णन है।

पूंई पितरों के लिए मनाया जाता है। इसमें पितरों की पूजा होती है। पंडित लोग परिवार में उत्पन्न हुए किसी कष्ट का कारण पितरों का दोष बताते हैं। तब पूंई की तैयारी की जाती थी। इसके लिए परिवार को आर्थिक रूप से समर्थ होना चाहिए क्योंकि इसमें बहुत खर्चा होता है।

शेक्चुम के शुभ दिन, जुलाई माह में, गांव वालों को बुलाते हैं। इसमें पितरों की सूची तैयार की जाती है। वे फिर पत्थर के खान के पास जाते हैं। तरखान बुजुर्गों का नाम लिखता है जो उसे घ्यात, घर का मुखिया, बताता है। लोट में गोपी नाम का एक व्यक्ति था। वह सभी का नाम लिखता है। सभी का नाम याद रखा जाता है। इनमें भाइयों के नाम भी होते हैं। इनके यहां पितरों की संख्या 20 से ऊपर थी। फिर वह कारीगर स्लेट पर हर एक की मूर्ति उकेरता है। काम पूरा हो जाने पर सत्तू का पिंड तैयार करते हैं और भेंट करते हैं। तब उस मूरत को कपड़े में लपेट कर घर लाते हैं और घर में रखते हैं।

एक सेहणु अर्थात मुखिया चुनते हैं जिसे स्वाहत कहते हैं। जाहलमा के आगे ड्रेल्ड्रा गांव है यहां के लोग ही स्वाहत का काम करते थे। यहां भी एक परिवार है जो यह काम करता है। इसे ड्रेल्ड्राडू भी कहते हैं। वही सारा काम बताता है। खर्चे का अनुमान भी वही बताता है।

यह उत्सव क्युरल्ह यानि अक्तूबर-नवम्बर माह में मंडाई के समय मनाया जाता है। मूलिंग से मडग्रां तक के लोगों को बुलाते हैं। बाजा बजाने वालों को सबको बुलाते हैं। सभी गुरों को बुलाते हैं जो लगभग 14-15 होते हैं। सभी पंडितों को बुलाना पड़ता है। वे एक सप्ताह पहले आते हैं। वे अंदर बैठते हैं। पूजा करते रहते हैं। उनका खाना अलग से बनता है। इनके रिश्तेदार भी पहले ही आ जाते हैं।

लोग बाजे वालों के साथ अलग-अलग झुंडों में आते हैं जो 12-13 होते हैं। इस प्रकार के समूह को गुजूं कहते हैं। सभी लोग बाजे वालों के साथ इकट्ठा होकर आते हैं। जाहलमा और योबरङ के गुजूं पूईं के दिन सुबह आते हैं। ये शक्तिशाली माने जाते हैं। शेष गुजूं पूंई के पहले दिन आते हैं।

घ्यात हर गुजूं का शिरदार बनकर, कन्धे पर दराट रख कर, स्वागत करता है। गुर लोगों पर देवता चढ़ता है। वे गुजूं के आने पर भेड़ का मांस गिराते हैं। वे हल्डा के साथ छत से गिराते हैं। इसे सब प्रसाद के रूप में खाते हैं। एक गुजूं को एक एक भेड़ देते हैं। लोगों को भीतर ले जाकर भोजन कराते हैं। फिर दूसरा गुजूं आता है।

फिर उनको बाहर खेत में बिठाते हैं। वहां वे आग जला कर उसके गिर्द समूहों में बैठते हैं जिसे जागरा कहते हैं। लोग खाली आते हैं। कुछ लेकर नहीं आते हैं। परन्तु रिश्तदारों के साथ बर्तन अर्थात उनके साथ लेनदेन होता है। वे भेड़ वगैरा देते हैं।

करनम, वसन्त के समय धजा, अर्थात पत्थर का सात-आठ फुट का खम्भा, लाते हैं। धजा गांव वाले बनाते हैं। उसमें भी भेडू दिया जाता है। एक पूंई के लिए एक ही धजा बनाया जाता है।

गांव वाले साल के शुरू से ही मढ़ बनाना आरम्भ कर देते हैं। प्रत्येक पूंई में नया मढ़ बनता है। पुराने मढ़ को तोड़ देते हैं। अगर जगह नयी हो तो पुराने को नहीं उखाड़ते हैं। एक ही चील के वृक्ष की लकड़ी से सारा मढ़ तैयार करते हैं। खम्भे पर कारीगर चित्रकारी करते हैं परन्तु उसका धार्मिक महत्व नहीं है। यह मढ़ 10-12 फुट लम्बा और चौड़ा होता है। इसका माप और मुख की दिशा नियत नहीं है। जगह के अनुसार बनाते हैं। मढ़ का दूसरा मंज़िल नहीं बनाते हैं। यह एक ही मंज़िला होता है।

पूईं के पहले दिन धजा को स्थापित करते हैं। उस समय शहद लगा रोटी प्रसाद के रूप में बांटते हैं। पूईं के दिन सुबह पूजा होती है। बाजा बजाने वाले दरवाज़े के बाहर बैठते हैं। घर का मुख्य चाहूण उनके साथ दरवाज़े के बाहर बैठता है। अन्दर एक बडा मशाल बनाते हैं। सभी गुर निकलते हैं। घर का गुर दरवाज़ा खोलकर जलते मशाल में सत्तू फैंकते हुए आगे आगे निकलता है।

घर के सभी सदस्य अच्छे अच्छे कपड़े और गहने पहन कर हाथ से हाथ पकड़ कर निकलते हैं। सबसे आगे बाजा बजाने वाले होते हैं। उनके बाद गुर होते हैं। उनके बाद घर के लोग फिर बाकी लोग। तीन कुम्भों में धारणी बनाते हैं। इसमें चौदह रत्न होते हैं। कुंभ क्रम से पहले मढ़ में दबाते हैं फिर घर में और आखिर में खेत में। घर में नीचे के तल में भेड़शाला में दबाते है। खेत में उस जगह दबाते हैं जहां फसल मंडाई करते हैं। उसके केन्द्र में पुद, मंडाई के खेत का खम्भे, के नीचे दबाते हैं। मढ़ में भी बीच में खम्भे के नीचे दबाते हैं। कुंभ को तकरीबन 4-5 फुट से नीचे दबाया जाता है।

खेत में घर के सभी सदस्य हाथ से हाथ मिलाकर नाचते हुए पुद का घढ़ी की दिशा में तीन चक्कर लगाते हैं। ये एक गीत गाते हैं जिसे लला कहते हैं। लला जानने वाला व्यक्ति क्वङ गांव जो ड्रेल्ड्रा के साथ है में रहता था। वह 1944 में ही बूढ़ा था। उसके बाद पूईं नहीं हुआ तो यह गीत गाने वाला कोई नहीं हुआ।

खेत में कुंभ गाड़ने के बाद मूरत अर्थात वह शिला जिस पर पितरों की मूर्ति बनी होती है मढ़ में स्थापित करते हैं। यह सफेद कपड़े में लपेटा होता है। यह काम सारा ब्राह्मण लोग करते हैं।

उसके बाद पूंईं का भोजन शुरू हो जाता है। एक लम्ज़ः, तांबा या पीतल का खुले मुंह वाला बड़ा बर्तन, में घी गर्म करके पिघलाते रहते हैं। लम्ज़ः के पास उदयपुर के भगवती का गुर बैठता है। यहां 100 पीपा से ज़्यादा देसी घी लगा था। लगभग 120 भेड़, एक खारी, लगभग चार क्विंटल, सत्तू और इससे भी अधिक आटा लगता है। इनके घर में चार डाट यानि भंडार थे। उन पर चढ़ने के लिए सीढ़ी लगाते थे। उनमें भरकर आटा रखते थे। उस समय डी.सी. ने अमृतसर से गेहूं मंगा कर मदद की। आटे का रोटी बनाते हैं। यह 3-4 रोटी के बराबर मोटा होता है जिसे पोड़ कहते हैं। हरेक को सात सात पोड़, एक थोम्बु घी, लगभग एक पाव और उतने ही भार का मांस का एक टुकड़ा देते हैं।

उत्सव में पांच हज़ार के करीब आदमी आए थे। बच्चे और औरत सब आते हैं। सब को पोड़ देते हैं। यह घर ले जा सकते हैं। यहां रहते हुए भोजन सबको अलग से दिया जाता है। लोग पूंईं के दिन वहीं रहते हैं। गुजूं दूसरे दिन जाते हैं।

बजाने वालों को घर के सामने लाकर उनको एक-एक भेड़ देकर भेजते हैं। गुरों को एक-एक पीपा घी देते हैं। घी के साथ मारचु यानि पूरी व कपड़ा देकर घर छोड़कर देते हैं।

जब भी गांव में त्यौहार होता है मूर्ति की पूजा होती है। मूर्ति को छुङ्मर अर्थात् घी डालते हैं और म्हरपिणि यानि घी और सत्तू का पिंड चढ़ाते हैं।

- मियां बेहड़, ढालपुर, कुल्लु, हि०प्र०।

मढ़, गांव शांशा

कुंह या कुस.. या फागली

रणवीर सिंह शाशनी

खोगल के 14-15 दिन बाद 'कुंह' या 'कुस' या 'फागली' त्यौहार का आगमन होता है। फागली तो लगभग पूरे हिमाचल के कई ज़िलों में मनाया जाने वाला त्यौहार है। लाहुल जनपद में इसे 'कुंह' या 'कुस' या 'कुंस' या फिर 'बड़ी दानो तीहार' के नाम से भी जाना जाता है। {'बड़ी दानो' अर्थात 'बलि दानव' या यूं कहें दानव राज महाबली जिसका साम्राज्य पूरे दक्षिणी भारत में रहा है और जिसने केरल के महाबलीपुरम जिसे मामल्लपुरम भी कहा जाता है, को अपनी राजधानी बनाया हुआ था। देश भर में इनके राज्य में प्रजा की सुख समृद्धि के लिए याद करते हैं और इनकी वापसी की कामना करते हैं। इसी स्मृति में 'ओणम' नामक त्यौहार मनाया जाता है। पौराणिक कथाओं में जिन मानव समूहों को असुर, दैत्य, राक्षस, नाग आदि कहा गया वे सिन्धु घाटी सभ्यता के मूल निवासी थे और मेघवंशी थे। आर्यों के साथ पृथ्वी पर अधिकार हेतु संघर्ष में पराजित हुए थे। फिर राजा बलि ने अश्वमेध यज्ञ किए। देवता और असुरों के बीच कई लड़ाईयां हुईं। देवता अंततः हार गये। जम्बूद्वीप पर असुरों का राज हो गया।

फिर अमृत का लालच देकर असुरों को मंथन के लिए राज़ी किया गया, किंतु वे देवताओं द्वारा छले गए। इसी कारण देवासुर संग्राम छिड़ा। इन्द्र ने वज्र से बलि का वध कर दिया। लेकिन गुरु शुक्राचार्य के मंत्र बल से पुनर्जीवित हो गए। लेकिन इन्द्रलोक असुरों के हाथ से जाता रहा। राजा बलि ने पुनः शक्ति एकत्रित कर देवताओं

बराज़ा चित्रण, गांव मेलिङ

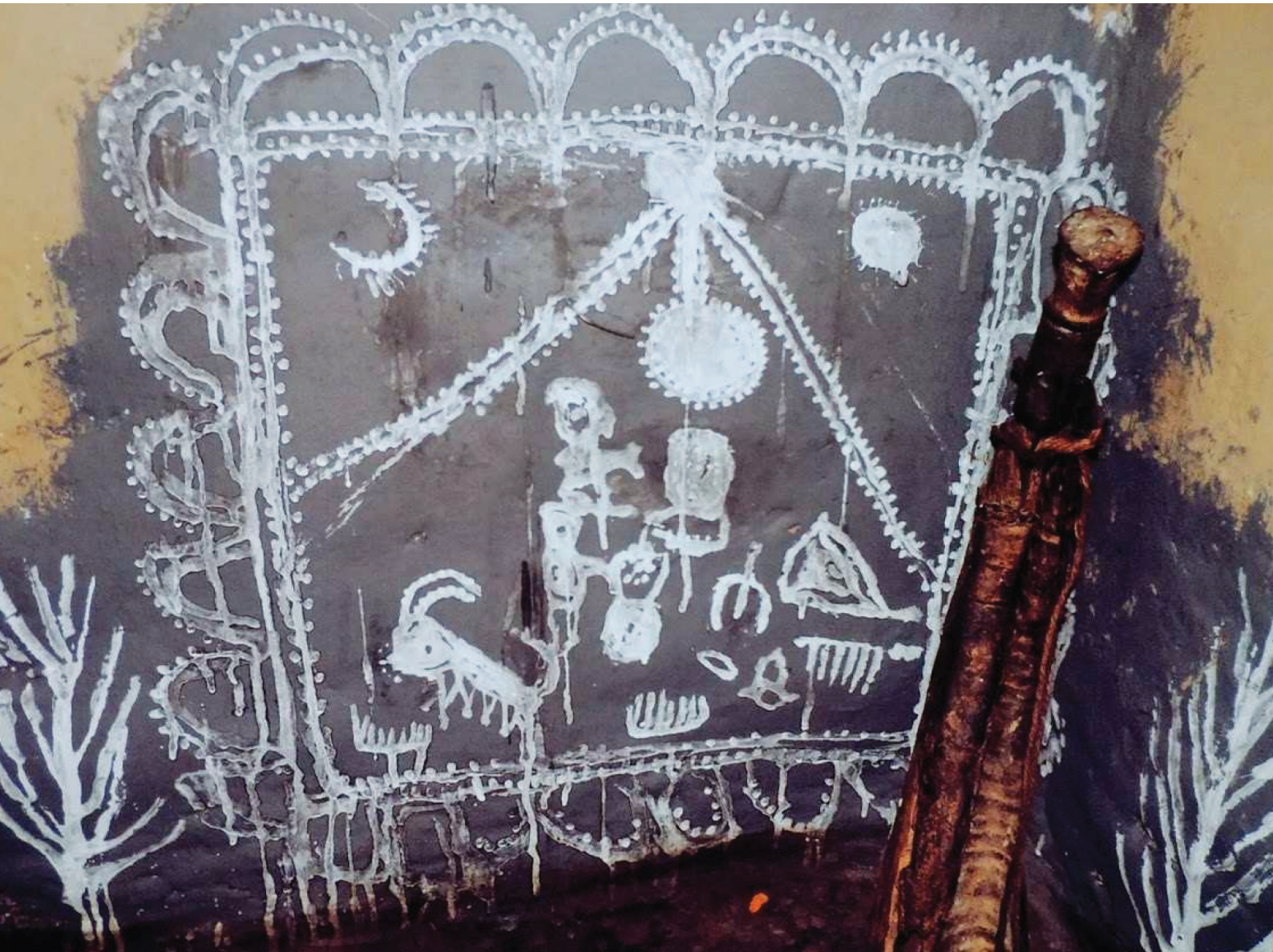

से बदला लेने की ठानी। सौवां अश्वमेध यज्ञ करने के बाद पुनः इन्द्रलोक को हथिया लिया।

देवता बलि को नष्ट करने में असमर्थ थे। इस लिए देवता विष्णु के पास गए। राजा बलि विष्णु का भक्त था। अतः विष्णु वामन अवतार का रूप धर कर उस समय उनके पास गए जब राजा बलि एक और यज्ञ की योजना कर रहा था। शुक्राचार्य उन्हें देखकर तुरंत भांप गए। शुक्राचार्य ने राजा बलि को सचेत कर लिया और कहा कि वे उन्हें पूछ कर ही निर्णय लें। वामन अवतार के रूप में विष्णु ने तीन पग ज़मीन मांगी। राजा बलि ने हां कर लिया। वामन अवतार ने अपना विराट रूप दिखा दिया और दो पग में धरती और आकाश माप लिया तीसरे पग के लिए पूछा कि कहां रखूं। राजा बलि ने उत्तर दिया, ''इसमें तो कमी आपके बनाने में हुई, मैं क्या करूं भगवन..? अब तो मेरा सिर ही बचा है।'' इस प्रकार उसके सिर पर तीसरा पग धर दिया। इस बात से प्रसन्न होकर विष्णु ने उसे पाताल लोक में रसातल का कलयुग के अंत तक राजा बने रहने का वरदान दे दिया। अपने राज्य पाताल लोक की रक्षा के लिए विष्णु को रक्षक बने रहने के लिए आग्रह किया। जब विष्णु सशरीर पाताल लोक की रक्षा के लिए उपस्थित रहने लगे तो लक्ष्मी जी अति चिंतित रहने लगी। नारद जी की युक्ति से लक्ष्मी जी एक रक्षा-सूत्र लेकर राजा बलि के पास एक दुखियारी बन कर उनसे सबसे कीमती चीज़ वर में मांगने लगी। राजा बलि के लिए सबसे कीमती चीज़ विष्णु ही थे। लक्ष्मी जी ने वास्तविकता बताई। क्योंकि लक्ष्मी जी ने सूत्र पहनाकर राजा बलि को अपना भाई बना लिया था। अब राजा बलि अपनी बात से मुकर नहीं सकते थे। अब क्योंकि रिश्ता कायम हो गया था तो राजा बलि ने कुछ दिन और पाताल लोक में उनका आतिथ्य स्वीकार करने को कहा। लक्ष्मी जी और भगवान विष्णु ने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया। वे श्रावण पूर्णिमा रक्षा-बन्धन, से कार्तिक मास की त्रयोदशी तिथि धनतेरस, तक वहीं पाताल लोक में रहे। धनतेरस के बाद जब वैकुण्ठ लोक में लौटे तो दूसरे दिन दीप-पर्व मनाया गया। इस प्रकार तब से लेकर आज तक उस स्मृति में ही दीपोत्सव मनाने का एक कारण यह भी है। और शायद लाहुली कुस या कुंह की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इसी पर टिकी है। कुल्लू मनाली की फागली विशेषतः मनाली की फागली की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तो ''टुण्डी राक्षस'' और उसकी पत्नी 'तिम्बर छातकी' की कथा-कहानी पर टिकी है। (नेट से साभार)

अब प्रश्न यह है कि राजा बलि से लाहुल वालों का क्या नाता..? क्यों राजा बलि को लाहुली समाज सम्मान की दृष्टि से दखता है..? ये सभी प्रश्न अभी अनुत्तरित हैं।

कुंह या कुस का शाब्दिक अर्थ क्या है? इसकी जानकारी अभी तक नहीं मिली।

खैर...यह पटनी महीना 'ढङ'ल्ह'अ' के 'इत्स'अ थ्से'शि' (इच्व़ः छ़ेशि) अर्थात माघ प्रतिपदा को आता है। उस सूरत में इसे 'माघी' कहा जाना चाहिए था, यदि फागुन में आता तो ही फागली कहा जाना चाहिए था। क्योंकि कुल्लू-मनाली या अन्य स्थानों की फागली की तरह लाहुली फागली मनाई जाती है शायद इसीलिए इसे फागली कहा गया।

'कुस' या 'कुंह', वरदान एवं अभिवादन का पर्व है, जिसे कुछ विद्वान मैदानी भागों में मनाया जाने वाला लक्ष्मी-पर्व का प्रतिरूप भी मानते हैं। 'उत्न'अ' अर्थात् लोहड़ी पर्व के बाद 'सद-मोउ-प्रोहउड़ि तिक्सि' अर्थात् लाहुली मंदिरों के द्वार-किवाड़ बन्द किए जाते हैं और 'चेत्रोड़ि' अर्थात् चेत्र प्रतिपदा से एक दिन पूर्व तक बन्द ही रहते हैं। 'चेत्रोड़ि' के दिन सभी घरों में अपनी-अपनी 'घरशिड़ि' अर्थात 'गृह-श्री' की पूजा-पाठ के बाद, लोट गांव की सामूहिक पूजा-पाठ पूरे विधि विधान से, नाग देवी सलम जी, माता मराड़ी जी और केलिंग वजीर जी की तथा मेलिङ के मन्दिर में देवाधिदेव महादेव जी की पूजा-पाठ व्यक्तिगत तौर पर की जाती है।

'उतन'अ' अर्थात् मकर-संक्रांति से लेकर 'चेत्रोड़ि' अर्थात् चेत्र संक्रांति तक का समय राक्षसों-दानवों का समय या काल माना जाता है। लोग इष्ट देव से प्रार्थना करते थे कि वे इस काल के दौरान सुरक्षित रहने चाहिए और तभी चन्द्रमास की प्रथम तिथि को एक दूसरे के हाल-चाल पूछेंगे और देवी-देवताओं सहित बुज़ुर्गों से सुख-समृद्धि का आशीर्वाद भी लेंगे। प्राचीन काल में, बर्फ में नये रास्ते नहीं लगाए जाते थे। अगर कोई नया रास्ता लगाए तो उसे दण्ड-स्वरूप एक भेड़ की बलि देनी पड़ती थी। न ही उस दौरान ज़्यादा शोर शराबा करते थे। एक समुदाय के लोग नव-प्रसूता बहू को घर में स्नान करने के बजाय 'क्वङ्रि' नामक एक खेत के कोने में स्नान करवाते थे। वैसे ऐसे चलनों का अंत बहुत साल पहले ही हो चुका है। एक मान्यता यह भी थी कि कुस से एक दिन पहले 'कुह्यग' के सांझ को, 'मरगुल' अर्थात् उदयपुर मृकुला माता के 'द्वार-बीर'अकु' अर्थात् दो द्वार-पाल अर्थात् भैरव, जो काली के खप्पर की रक्षा करते हैं। यह खप्पर मौजूदा मूर्ति से पहले रखी गई थी, जब ये द्वारपाल संगम स्नान हेतु प्रवास पर होते हैं, मन्दिर के पुजारी को इसकी रक्षा करनी पड़ती है। उस रात को सात बार पुजारी के घर तथा मन्दिर में इसे ले जाना पड़ता है। पौ फटने से पहले ये द्वार-पाल वापिस पहुंच जाते हैं। इस खप्पर का दर्शन हर किसी को करने नहीं दिया जाता है। 'सुज़ि' अर्थात् पवित्र स्नान के लिए 'संङ्डा'मुङ' अर्थात् संगमस्थल {तान्दी-घुशाल के पास चन्द्रा और भागा नदी के मिलन स्थली पे} स्नान के लिए आते हैं। यह मान्यता है कि तान्दी जिसे कुछ भोटी विद्वानों के अनुसार, 'तङ' अर्थात् स्वर्ग और 'ती' अर्थात् पानी या यूं कहें स्वर्ग का पानी अर्थ माना जाता है, संगम में स्नान

कर लेने के बाद वे फिर भूमि मार्ग से वापिस न जाकर, जल-मार्ग अर्थात् चन्द्रभागा या चिनाब नदी पर सवार होकर जाया करते हैं। इसके लिए गुरु-घण्टाल का इष्ट-देव उन्हें बाध्य करता है। क्योंकि कहा जाता है कि उनको चिंता रहती है कि अगर वे उनसे ऐसा न करवाते तो वे दोनों रास्ते में बहुत उत्पात मचाएंगे। उदयपुर से तान्दी आते समय वहां से लेकर तान्दी संगम तक उनके ठहराव के कई स्थल हैं। लोट के पड़ोसी गांव रुड़िङ के 'रोउपा' परिवार वाले जब दोनों परिवार इकट्ठे रहा करते थे तब की बात। वे एक ब्राह्मण परिवार है। वैसे रुड़िङ में सभी परिवार ब्राह्मणों का है। उस सांझ को अपने घर के 'ल'प्स'अ' (लप्चः) अर्थात् अहाते में दो जोड़े पूले और एक हुक्के में चिल्लम भर कर, अधजले उपलों को अलग रख देते थे। बाद में पूले इस्तेमाल किए हुए और हुक्का पिया हुआ छोड़ा होता था। हो सकता है कोई पुराने पूले छोड़, हुक्का पीकर जाता हो, ऐसी सम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता, पर जब 'उनका' आगमन होता था तो घर के दिये की लौ दो भागों में बंट जाती थी। मैंने पूछा कि क्या इस साल भी अर्थात् सन 2016 को भी, ऐसा ही कुछ हुआ? तो रुड़िङ रोउप'अ परिवार के चाचा सुखदास जी जो अभी ज़िन्दा हैं, 86 साल की उम्र है, कहने लगे कि, ''पूले और हुक्का तो अब रखे नहीं जाते, किंतु हां सांझ को दिये की लौ दो भागों में बंट कर जलने लगी, हालांकि एक ही बत्ती थी।'' कमरिङ के श्री सजा राम 'मान' जी जो इस वर्ष अर्थात 2016 में, 91 वर्ष के हैं, बताने लगे, ''कि उनके घर में भी दिये की लौ दो भागों में विभाजित होकर जलने लगती थी। उनकी माता जी आज से काफी वर्ष पहले, उस दिन किन्हीं विशेष कारण से, छत पर बैठी हुई थी। सांझ को उन्हें ऐसा आभास हुआ कि कोई ब्यूंस की टहनियों का गठ्ठर या पटनी में कहें तो 'शुकिल्ज़ो पण'अ' जैसे कोई घसीट कर ले जा रहा हो। उन्होंने तुरंत ही अपने घर में इतलाह दी कि उन्होंने कुछ आवाज़ सुनी है और दिये की लौ दो भागों में जलने लगी। फिर एहसास हुआ कि यह 'उनके' आगमन का संकेत है।'' श्री सजा राम जी के मुताबिक, एक मान्यता अनुसार ये द्वार-बीर शिवरात्रि के दौरान मण्डी शहर के पुल तक चले जाते हैं।'' ऐसे ही ठोलंग के 'ट्रोष्प'अ' परिवार वाले इन्हीं की तरह पूले के जोड़े और हुक्का भर कर रखा करते थे। शायद तान्दी में भी कोई 'चन्द' नाम के व्यक्ति के घरवालों का ऐसा ही कुछ चलन रहा है।

''लाहुल घाटी में, 'कुस' को 'कुंह', 'फागली', लोसर आदि कई नामों से जाना जाता है। निस्सन्देह लाहुली समाज में अभिवादन एक रोज़नामचे का हिस्सा नहीं है। इसी कारण, केवल मात्र इस पर्व के दौरान ही ''ढाल'' अर्थात् नमस्कार बड़ी शिद्दत के साथ किया जाता है। उम्र में बड़े के अनुसार, आदर सम्मान, नमस्कार तथा श्रद्धा को अभिव्यक्त किया जाता है, जिसे यहां की ज़ुबान में 'ढाल' कहा जाता है।''

लोट में वैसे तो पूरे लाहुल में खास तौर पर पटन घाटी में, 'कुस' की शुरुआत इस प्रकार होती है.

1. 'गुनत्रेईं' अर्थात् 'गुन कि त्रेईं' अर्थात् शीतकालीन भेड़ या यूं कहें शरद ऋतु में काटा जाने वाला भेड़ा। यह 'सिल-पुनः' से तीन दिन पहले आता है। इस दिन हर मांसाहारी घर में एक भेड़ काटा जाता था। आज के युग में अधिकांश घरों के लोग शाकाहारी हैं। इस दिन मांसाहारी घरों में सामिष भोज्य पदार्थ त्यार किये जाते हैं। खास तौर पर 'मोग्-मोग्' जिसे आज के युग में 'मो-मो' कहा जाता है। और 'क'रा' अर्थात् अखरोट की गिरी के या फिर अफीम दाने के 'त्सुङ' (चुङ) अर्थात् छोटे Dumplings बनाये जाते थे। फिर कुछ मोमो और त्सुङ (चुङ) में जानबूझ कर, 'क्रो' अर्थात् कोयला, 'थ्सा' आर्थात् नमक, 'र्‌हग' अर्थात् कंकड़, 'त्स'म' (च़म) अर्थात् ऊन, 'टुर' अर्थात् चावल, 'शुर' अर्थात् देवदारू की पत्तियां आदि डाले जाते। जिसके त्सुङ में कोयला मिले तो रो'कि सेम'रङ, दिल का काला, नमक हो तो 'रोह्‌षाडू' या 'रोह्‌षिक्षा' अर्थात् गुस्सैल या जल्दी नाराज़ होने वाला और चावल मिले तो क्रमशः 'ड्र'चि' अर्थात् किसी भी अपूर्ण काम के पूर्ण हो जाने का और शुभता का संकेत, कंकड़ मिले तो र्‌ह'ग्दु शुजः'रङ, पत्थर दिल वाला, ऊन मिले तो न'खि सेम'रङ, नर्म दिल वाला और शुर मिले तो सद राजी, देव प्रसन्न होने का संकेत माना जाता है। किंतु यह एक घरेलू मज़ाक होता है।

गुंत्रेईं से लेकर घुनु, कुह्वग के सांझ तक और फिर सिल पुनः के सुबह तक, रोज़ 'घरशिड़ि' की पूजा-पाठ की जाती है। पूजा पाठ की सरल प्रकिया है, दिया-बाती और धूण-धुपौती और हाथ जोड़ कर नमस्कार की मुद्रा में सभी देवी-देवताओं को सुमिरन कर उनकी कृपा मांगी जाती है। पूजा-पाठ का कार्य आम तौर पर घर के मुखिया द्वारा ही सम्पन्न होता है।

आज से 45-50 साल पहले, लोट गांव में, चेत्रोड़ि के दिन हर वर्ष दो भेड़ या फिर एक 'ल'त्स'अ' (लच़ः) अर्थात् 'छाग-शिशु' और एक 'क'र्त्स'अ' (कर्च़ः) बड़ा भेड़, {'उत्न'अ' और 'शेक्त्सुम' (शेक्चुम) को छोड़ कर}, गार के ''टुग अत्सि'' (अच़ि) अर्थात् गार के कुहल में प्रथम बार पानी लाते समय एक भेड़, फिर यङरङ की नागदेवी सलम जी की मनौती के लिए एक 'ख्रीड़'अ' अर्थात् साल-ढेड़ साल के भेड़ के बच्चे को, 'मित्सि' (मिच़ि) {?}, के दौरान एक 'कुर्त्स'अ' (कुर्च़ः) अर्थात् मेमना, फिर एक मेलिङ, र्‌वलिङ और केलिंग के लिए 'त्रे'ईं' अर्थात् एक-एक भेड़, और भुतुङ्रु परिवार के 'ल्हेचुङ' नामक जगह में 'घुम्जोरे त्सोङ-त्सोङ' (चोङ-चोङ) अर्थात् एक तिकोने व शंक्वाकार पत्थर के सामने एक भेड़ की बलि दी जाती थी। लोट के शाशनी परिवार की ओर से हर वर्ष 'त्स'क्ति' (च़क्ति) अर्थात् लुगड़ी, 'घुम्रि छ्वा' अर्थात् लगभग 3

किलो अनाज़, एक 'ख्रीड़'अ' अर्थात् भेड़ का एक साल का मेमना र्'वलिङ 'स'द' अर्थात् र्'वलिङ देवता के लिए देना पड़ता था। र्'वलिङ की 'धेणि' अर्थात् र्'वलिङ की बेटी लोट ब्याही गई थी। इसलिए उसे ये सारी चीज़ें ले जानी पड़ती थी। लिण्डुग् और पिउकर ब्याही गई दोनों ''धेणि'' अर्थात् बेटियों को 'टोटु' अर्थात सत्तू और घी से ही काम चल जाता था। किंतु बाद में शाशनी परिवार के स्वर्गीय श्री सोमदेव जी के आग्रह पर वारी वाले गुर स्व. श्री छ़ेरिङ फुंचोग ने इसे माफ करवा दिया। एक साल 19 भेड़ों की बलि दी गई और दूसरे साल 21। घुशाल पुल से वार अपने मायके आने वाली हर बहू को एक मेमने की बलि देने की प्रथा थी। घुशाल गांव में भी अनेकानेक बलियां देने की प्रथा प्रचलित थी। किंतु घुशाल में स्वामी ब्रह्मप्रकाश जी के आगमन के पश्चात यह बलि-प्रथा न केवल वहां, अपितु लाहुल के अनेकानेक गांवों में भी लगभग समाप्त हो गई।

2. 'घुनु' :--इस शब्द का क्या अर्थ है वैसे स्पष्टतः मालूम नहीं। शायद 'गुन', 'नुह' 'पानु'--'घुनु' शब्द बना हो । 'गुन' अर्थात् शीतकाल का, 'नुंह' अर्थात् दही दूध, हो अर्थात् सर्दियों का घी, दूध-दही आदि, यह गुनत्रेईं के बाद ही आता है। इस दिन तेल में तले हुए पकवान ज़्यादा होते हैं। जैसे 'मार्चू' अर्थात् पूरियां 'लड़-दंज़'अ' अर्थात् 'लिंग और योनि' आकार की तली हुई पूरियां। जिन्हें बाद में बराज़ा के आगे सजा कर कांसे की थाल में रखा जाता है। 'कुर-कुर मार्चु' अर्थात् तेल में तली हुई करारी मीठी और नमकीन पूरियां आदि-आदि त्यार किए जाते हैं। शाम को पूजा-पाठ के बाद शागुण आदि करने के बाद 'दू-ए-म्हर' अर्थात् सत्तू का उबले पानी में त्यार किया घोल और घी और 'मार्चू-ए-म्हर' अर्थात् पूरी और घी या कई घरों में 'नुदु-ए-म्हर' अर्थात् उबले नमकीन दूध में आटे का घोल पका कर और उसके साथ घी परोसा जाता है।

3. 'कुह्यग' :- यह घुनु के बाद आता है। कुह्यग अर्थात 'कुंह' या कुस का और 'ह्यग' अर्थात् रात का खाना। पूरा अर्थ हुआ, कुस के पूर्व, रात का खाना। दिन को ही रात के खाने की तैयारी होती है। 'एट'अ' और 'मण्ण'अ' औरतें दिन के वक्त त्यार कर लेती हैं। एट'अ एक प्रकार की ज़ीरा और नमक युक्त खास किस्म की रोटी जो चपटी औए अनफूली रोटी होती है। एक तरह से पापड़नुमा। मण्ण'अ (manna), जिसमें नमक और ज़ीरा डला हुआ होता है और इस पर घी भी लगाया जाता है। एक तरह से डोसा की तरह का रूमाली रोटी है। भात, धीमी आंच में दालें और 'शाह्खल' अर्थात् भेड़ के मांस का बड़ा टुकड़ा अर्थात् (mutton Steak), पका कर त्यार किए जाते हैं।

इस प्रकार कोई भी त्यौहार हो, त्यौहारी खानों और पकवानों के बिना सम्पूर्ण नहीं होता है। शायद उन्हीं त्यौहारों के समय ही ये पकवान या भोज्य पदार्थों का सेवन सम्भव हो पाता था। यह बात न केवल एक परिवार या एक गांव तक सीमित थी, बल्कि सम्पूर्ण लाहुल घाटी आज से 50-60 वर्ष पहले अभावों में ही जी रही थी। इसीलिए त्यौहारों का नामकरण भी कुछ हद तक खान-पान के नामों के आधार पर किए गए थे, विशेषतः ऊपरवर्णित त्यौहारों के नाम ही देख लीजिए,

बराज़ा अर्थात् 'शिखर अप'अ' के आगे कांसे की थाल में ये सारे पकवान तथा जो घुनु के दौरान त्यार किए गए मार्चू और 'लड़-दंज'अ' आदि सभी चीज़ें इन्हें अर्पित की जाती हैं। श्री सजा राम 'मान' जी के अनुसार ..'' खोगल के दौरान एक 'रे'न' अर्थात् लकड़ी का बना हुआ सेर सवा सेर अनाज मापने का पात्र जिस में छ्वा विशेषतः 'थङ्ज़द' अर्थात् नंगा-जौ डाला जाता है। यौर'अ डाल कर यौर'अ से एक तरह से प्रश्न पूछा जाता है। प्रश्न यह कि आने वाले साल में कितना पानी होगा? यह यौर'अ पे देखा जाता है। यदि यौर'अ के सिरे पर नमी नज़र आए तो समझो कि पर्याप्त बारिश होगी अन्यथा सूखे का सामना करना पड़ेगा। ''एक दिया और कुछ अगरबत्तियां भी जलाई जाती हैं। घरशिड़ि की पूजा-पाठ के बाद कल-पितङ शागुणिक्ट्रि की जाती है। उसके बाद ही इस रात का खाना खाया जाता है। कमरिङ-मूरिङ और ब'रिङ की ओर के घरों के दरवाज़े पे 'तोड्कण्ड'ह' अर्थात् 'क्लग' अर्थात गून्धी मिट्टी की लोई पर 'थ्सव'ग' (छ्वग) अर्थात् कांटेदार झाड़ी के टुकड़े चिपकाए जाते हैं एक तरह से 'का'अर' अर्थात् अभिमंत्रित कर ताकि कोई नकारात्मक ऊर्जा घर में प्रवेश न कर सके।

4. 'सिल-पुन'ह':-- 'कुस' के दिन को ही 'सिल-पुन'ह' या कई लोग 'सिड्पुन'ह' भी इसे कहते हैं। सिल-पुन'ह का अर्थ है बहुत ही पवित्र और पावन दिन। घर का मुखिया और उनकी पत्नी अर्थात 'घ्यात-घरनि' दोनों पौ फटने से पूर्व उठ कर नहा धोकर, 'मिंड्डग' और 'भरलोउड़ि' छह तारों के समूह को मिण्ड्डग और 'भ'रलोउड़ि' अर्थात् ''भारिउ-लोउड़ि'' अर्थात् भारवाहक व्यक्ति की लाठी जैसी आकृति वाले तारा समूह को 'भरलोउड़ि' कहते हैं। इन दोनों तारा समूहों को लाहुली मिथक में स्त्री-रूपा माना जाता है। इनकी एक मिथकीय कहानी है। 'प्रे [Foxtail lily-Bot.Name & Eremurus Himaliacus] जो लाहुली पहाड़ों में उगने वाली एक वनस्पति है जिसमें मई-जून के दौरान बहुत ही सुन्दर फूलों का गुच्छा [florescence]] उगता हैा 'प्रे' पुरुष रूप माना जाता है। अतः 'प्रे' ने इन दोनों तारा समूहों से शादी-ब्याह का प्रस्ताव रखा। किंतु इन तारागणों ने यह कहकर शादी के प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि, ''तुझ जैसे फीके-हरे और ढीले-ढाले से कौन शादी करना चाहेगा..?'', क्योंकि प्रे कोई ज़्यादा सुन्दर वनस्पति नहीं। लेकिन इसकी सुन्दरता मई-जून के दौरान ही देखने को मिलती है। क्योंकि इसमें बहुत ही सुन्दर फूलों की बहार उस दौरान ही देखी जा सकती

है। कहा जाता है जब तारागणों ने मई-जून में 'प्रे' की सुन्दरता देखी तो पछतावे और शर्म के मारे वे दोनों तारागण छिप गए। अर्थात् शीत ऋतु के दौरान फरवरी से लेकर मई-जून के शुरुआती दिनों में ही ये तारासमूह दिखाई देते हैं। बाद में नज़र नहीं आते। शीत-ऋतु में लाहुल की औरतें मिण्ड्रुग-भरलोउड़ि जैसे तारा-समूहों के उदय होने तक तकलियों से ऊन कातती रहती थीं, अर्थात् देर रात तक। उसके बाद ही सो पातीं थीं। शायद वे इस प्राकृतिक घड़ी का इस्तेमाल किया करती थीं, क्योंकि उस ज़माने में लाहुल में घड़ियां नहीं थीं, जैसे तारा समूहों की स्थिति को देख लेने के बाद ही 'रिंक्वल्पि' अर्थात् देवी-देवताओं का अभिवादन के लिए घर के छत के उत्तर-पूर्वी कोने में, घ्यात-और घरनि पूरा सज-धज कर, पुरुष फूलों और यौर'अ से सुसज्जित टोपी आवश्यक रूप से पहन कर, तथा औरत कण्ठी-माला, बालों के गुत पे यौर'अ डाल कर तथा सफेद चादर ओढ़ कर ही साथ ही साथ धुणकड्थ्सि और शुर तथा यौर'अ लेकर निकलते हैं। इसके बाद घरनी सुबह मुंह अन्धेरे ही 'शुर-यौर'अ' लेकर जल-पूजन के लिए 'प्रेन्हाड़ा' अर्थात् पेय जल के स्रोत या पनघट पर 'छुज़ोम' अर्थात् 'जल ले आने का लकड़ी का पात्र' लेकर जाती है। वहां जल स्रोतों की पूजा-पाठ करने के बाद जल सबसे पहले भर कर लाने की कोशिश करती है। यह रिवाज़, न केवल यहां लाहुल में, बल्कि सुना है तिब्बत में भी है। आजकल जल के स्रोत रहे कहां घर-घर नलके आ गए हैं तो सबसे पहले जल भर कर लाने की होड़ पनघट पे कहां देखने को मिलता है..? पाईप के जरिये से मणियां भी कहां आ पायेंगी..? एक समुदाय के लोग, छत पर किल्टा भर बर्फ को उलट कर एक लिंगाकार बर्फ की चोटी पर 'शुर' की एक डाल गाड़ देते हैं। इस बर्फ की ढेरी को 'राह्श' अर्थात् 'राशि' या ढेरी..या बर्फ की राशि, कहा जाता है। एक अथवा तीन गोबर के 'टो'दु' अर्थात् गोबर से बने गणेश और एक थाल में चार टोटु पानी और सत्तू मिला कर गुन्धा हुआ शंक्वाकार लेई जिसे 'टोटु' कहा जाता है। छाछ और सत्तू मिलाकर बनाए हुए को 'पिण्णि' कहा जाता है। वैसे 'पिण्णि' ग्रीष्मकालीन अधपका भोज्य पदार्थ है जिसकी तासीर ठण्डी होती है। किंतु मेलिङ जागरे के वक्त ऐसा ही टोटु बनाया जाता है। प्रायः टोटु में छाछ के बजाए पानी ही मिला होता है। लुगड़ी या 'लुम' अर्थात् [fermented barley]] को सत्तू से मिलाकर जो लेई बनाई जाती है उसे 'बक्पिण्णि कहा जाता है। इसमें कई बार चीनी भी मिलाई जाती है। इसे आम तौर पर दूर यात्रा के वक्त अल्पाहार के तौर पर बनाया जाता है। इसे खाने पर भूख, प्यास और थकावट भी मिट जाती है। खोगल या कुस अथवा अन्य तीज त्यौहारों के दौरान देवी-देवताओं के लिए अर्पित किए जाने वाले टोटु संख्या में चार होते हैं। तीन त्सोङ-त्सोङ (च़ोङ्-च़ोङ्), शंक्वाकार और एक षुम्जोरे, तिकोना सा। ये चार टोटु माता मराड़ी, केलिंग बजीर, नाग देवी सलम जी और महादेव जी को समर्पित अर्घ्य हैं। लेकिन कई घरों में केवल एक या तीन ही टोटु बनाए जाते हैं, और कुछ 'त्सुर' (चुर) अर्थात् चिकोटी भर टोटु, या फिर 'कावाह्ड़ि' अर्थात् गून्धे सत्तू से बने हुए कौओं के लिए चुग्गा तथा कुछ् 'जिम्जग 'या 'छङ्प'अ' अर्थात् मुट्ठी में पिचकाए और घी चुपड़े हुए टोटु और एक 'के'रे'त्स'अ' (केरेच़ः) अर्थात् दंतुरित पूरी जो सूर्य का प्रतीक है, उस पर 'दन्ज़'अ' अर्थात् तेल में पकाया हुआ टंगरोल के आकार की पूरी, तथा 'ल'त्संङ' (लच़ङ) अर्थात् अर्ध-चाँद जैसा 'मार्चु' अर्थात् पूरी, जिन्हें देवी-देवताओं को अर्पित किए जाते हैं और एक अथवा तीन 'प्या' प्या कोई चिड़िया नहीं, वह तो प्य'ह कहलाता है। यह तिकोने आकार का या पिरामिडाकार होता है, एक बड़ा और दो छोटे तथा एक धुणकड्थ्सि लेकर आते हैं। 'प्या', के पीछे एक कहानी है। कहानी इस प्रकार है कि किसी घर में सर्दियों में, इस त्यौहार के दौरान, एक भूत चला आया। घर के मुखिया को खाना चाहा। घर का मुखिया तेज़ बुद्धि वाला था। उसने भूत के सामने एक शर्त रखी। शर्त यह थी कि वह भूत अगर 'प्या' को गिरा पाए तो ही वह उन्हें खा सकता है। भूत रात भर उस प्या को गिराने में लगा रहा किंतु गिरा ही नहीं पाया। सुबह होते ही भूत भाग खड़ा हुआ। दर-अस्ल प्या की बनावट ही ऐसी होती है कि 'प्या' को जैसे मर्ज़ी फैंको तो इसका एक कोना हमेशा ऊपर की ओर होता है। इन बातों से कई बार लगता है लाहुली धार्मिक आस्था विकास के प्राथमिक या द्वितीय चरण में था। भूत-प्रेत पर विश्वास पहली अवस्था तथा जीव-जंतुओं की पूजा दूसरी अवस्था मानी जाती है। कहा भी जाता है कि, ''बड़ी दानो प्या ख'ड़ेउ ख'ड़े'' अर्थात् भले काम का नतीजा हमेशा भला ही होता है। रिंक्वल्पि करने के बाद जब एक समुदाय का मुखिया घर के अन्दर प्रवेश करने लगता है तो वह अपने घर के लोगों से पूछता है, ''सो'ना कुंज़ियां ..?'' या फिर दूसरा समुदाय इस तरह कहता है, ''कुरङ मरङ कुम्मि केह्सुआ..?'' अर्थात् कुस की सारी त्यारी हो गई क्या..? भीतर से उत्तर हां में मिलने पर ही वह अन्दर प्रवेश करता है।

छत पर शुर-यौर'अ फैंकने और देवी-देवताओं का अभिवादन करने के बाद, घरशिड़ि पूजन की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। इस पूजन के बाद पति-पत्नी के द्वारा 'कल-पितङ शगुणिक्ट्रि' अर्थात् खिड़की-द्वार पूजन किया जाता है। 'दू-ए-म्हर' या मक्खन चिकोटी भर लेकर तर्जनी तथा अंगूठे से द्वार के चौखट के ऊपरी हिस्से पर तीन बार मक्खन या दू टिका कर उन तीनों के साथ यौर'अ चिपकाए जाते हैं। फिर बराज़ा से वर मांगे जाते हैं। तब तक घर के सभी लोग आपस में भेण्टने के लिए तैयार होते हैं। उम्र और रिश्ते की वरीयता क्रम में ही 'क्वल्पि' अर्थात भेण्टने का सिलसिला शरू हो जाता है। भेण्टने की या 'क्वल्पि' की प्रक्रिया यह है कि दोनों जने जो भेण्टने वाले हैं, वे हाथ में 'यौर'अ' लेकर सीधे आमने-सामने खड़े हो जाते हैं।

कुछ यौर'अ का अंश लेकर एक-दूसरे को देते हैं। यौर'अ सदा दायें हाथ से दिया जाता है, और बांये हाथ से ही लिया जाता है। फिर झुक कर एक-दूसरे के पांव छूकर खड़े हो जाते हैं, फिर हाथों को जोड़कर 'ढाल जी' अर्थात् नमस्कार जी कह कर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। उम्र में जो बड़ा है वह छोटों से उनका हाल-चाल के बारे पूछता है, ''आईन तोईना..?'' अर्थात् ''तुम्हारा हाल-चाल ठीक था क्या?'' या फिर कुछ बहुत ही बुजुर्ग लोग एक हाथ मांगने की मुद्रा में आगे बढाते हुए आदर सूचक मुद्रा में, ऐसा भी पूछा करते थे, ''म'थ्स'अ तोईञिआ..?'' अर्थात् आप लोग कुशल-मंगल थे क्या..? आजकल इस तरह की अभिव्यक्ति सुनने को नहीं मिलती। उम्र में जो कनिष्ट है उसका उत्तर हमेशा यही होता है,'' केन'अ जुस जी अर्थात् ''जी, बस आप ही की कुशलता की कामना है।'' अर्थात् अपनी बात न कहकर पूछने वाले की कुशलता की कामना को तरजीह देना। एक लिहाज़ से पूछने वाले को सम्मान देते हुए यह स्वीकारोक्ति कि स्वयं तो कुशल-क्षेम है ही। ऐसा आम तौर पर मिलते वक्त नहीं किया- कहा जाता है। यदि बहुत दिनों के बाद मिलन हो तो उस वक्त जो अभिवादन किया जाता है उसे 'ठे'ल'अ' कहा जाता है। उसे फिर 'ढाल' नहीं कहा जाता है। 'ठेल'अ' दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार की मुद्रा में थोड़ा झुक कर किया गया एक अभिवादन है। पर लाहुल में, विशेषतः पटन में, ठेल'अ रोज़ नहीं किया जाता है।

'कुस' के त्यौहार के समय, पूले और ऊनी जुराब, एक-एक 'पण्ड'ह' और बड़े-बूढ़ों को 'झोलुणु' अर्थात् फूलों से सुसज्जित कुल्लवी या लाहुली टोपी आदि घर की मां-बहनें और बुआ और भाभियां दे जाती हैं। बदले में उन्हें कुछ पैसे दिए जाते हैं। नये ऊनी कपड़े भी सिले जाते हैं। घर में बड़ी चहल-पहल और रौनक रहती है। सुबह हल्का-फुल्का नाश्ता करके 'भग्याड़ों' के वहां जाया जाता है अथवा भग्याड़ों के आगमन की प्रतीक्षा की जाती है। इसमें भी रिश्ते में वरीयता का ही ध्यान रखा जाता है।

भग्याड़ या फिर नज़दीकी रिश्तेदारों के घरों में उम्र और रिश्ते में जो वरिष्ठ हो उनके पास अभिवादन और भेण्टने के लिए जाया-आया जाता है, उसके उपरांत ही गांव के बाकी घरों में जाया-आया जाता है। जब 'क्वल्फ'रे' भेण्टने वाले, घर में आने लगते हैं, तो उनके स्वागतार्थ 'शुर-तु-ढकि' अर्थात् देवदारू की डाल को जला कर घर के बाहर ले जाया जाता है। शायद वातावरण को शुद्ध करने के लिए और भेण्टने वालों के स्वागतार्थ..ज्यों ही वे कमरे में आते हैं तो सर्वप्रथम जो उम्र में बड़ा या बड़ी हो उसका अभिवादन यौर'अ दे कर 'ढाल' कह कर करते हैं और फिर सभी छोटे-बड़ों के साथ उसी तरह भेण्टने की क्रिया शुरु हो जाती है। इसी भेण्टने और परस्पर अभिवादन की रस्म-अदायगी को ही 'क्वल्पि' कहा जाता है। 'क्वल्पि' को मूलिङ-बरगुल की ओर के लोग 'पुनाड़ा' शायद पुन'ह से पुनाड़ा, पुन'ह हिन्दी शब्द पुनः नहीं बल्कि इसका अर्थ है 'पवित्र या पावन' अर्थात् सिल-पुन'ह के दिन, और किरतिङ-ढ्वांशा के इलाके के लोग इसे 'ट्र'ल' अर्थात् सामाजिक मेल-जोल, कहा करते हैं।

लोट में, रिश्तेदारों और भग्याड़ों के बाद सर्व-प्रथम भुतुङ्रु परिवार के घर अर्थात् केलिंग-बजीर के पुजारी के घर जाया जाता है। सभी गांव-वासी 'घ्यात-वर्ग' के परिवार टोटु, अर्थात् घी और मक्खन, शुर तथा यौर'अ ले जाते हैं। पुजारा उन सभी एकत्रित की गई धूप-बाती और धूण-धुपौती तथा टोटु के द्वारा 'सद-मोऊ क्रांह्द' अर्थात् 'विधि-विधान द्वारा देव पूजन' पूरे गांव-वासियों की ओर से अपने ही घर में करता है। फिर इसी घर से 'क्वल्पि' की प्रक्रिया शुरू की जाती है। यहां सुबह 12-1 बजे से लेकर 5 बजे तक रहा जाता है। शुरुआती दौर शागुण की प्रक्रिया से होती है। फिर चाय-पानी और खान-पान से, कुछ लोगों को पीने के लिए शराब भी दी जाती है। वह देसी या अंग्रेजी दोनों हो सकती है। पीने वाले की मंशा पर निर्भर करता है।

5 बजे से 10 बजे तक दूसरे घर में जाया जाता है। इस तरह 5-5 घण्टे का समय बांटा गया है दो-दो घरों में। लोट में लगभग सप्ताह भर यह दौर चला रहता है। जब तक हर घर में न जाया जाय तब तक चला रहता है। इस दौरान स्कूल के अध्यापकों, या कोई बाहरी आदमी गांव में नौकरी करने वाला हो उसे भी गांव के इस त्यौहार में शामिल किया जाता है। नाच-गाना और घीत-घुरे भी होता है। घुरे बैठे-बैठे ही गाया जाने वाला गीत है, जिसे लाहुली सांस्कृतिक गीत की संज्ञा दें तो शायद अतिश्योक्ति नहीं होगी। सुना है इनकी रचना निपट अनपढ़ गीतकारों ने एकांत में की है। वे जब एक-दो पंक्तियों की रचना मौखिक तौर पर किया करते थे तो 'थुल्प'अ' अर्थात् भेड़ की खाल को ओढ कर, धागे में एक गांठ हर दो पंक्ति के बाद बांध कर उन पंक्तियों को कण्ठस्थ करते थे। गीतों पे ध्यान दें तो इनमें कुल्लवी, चिनाली, लुहारी बोली और चम्बयाली बोलियों का ही बोल-बाला है। पटनी जो मूल बोली थी, उस बोली में शायद ही कोई रचना रची गई। दूसरी बात इन गीतों की दो पंक्तियों में मात्रा एक बराबर नहीं। काफी ऊपर नीचे है। उदाहरणार्थ 'भ्यारो घीत' में पहली पंक्ति में अगर 26 मात्राएं हैं उनके बाद की दो पंक्तियों में तो यह मात्रा 26-26 ही है,पर चौथी पंक्ति में 27 और पांचवीं में 24 और फिर क्रमशः 22,24,22,20,23,22 हैं। इसी तरह 'सूर्य-चन्द्र की बहन के हरण' नामक घुरे में क्रमशः 31,28,32,24,31,24...फिर 34,24,31, 28,33,24,31,27,34,24,35,27 आदि..आदि है इस प्रकार मात्राओं की संख्या एक बराबर नहीं है। किंतु फिर भी वे कितने नज़दीक हैं

आप खुद देख लीजिए। हो सकता है मात्राओं की हमारी गणना का तरीका लेखन के आधार पर होने के कारण मात्राओं की संख्या में घट-बढ़ हो रही हो। क्योंकि रचनाकार ने तो जिस गीत की रचना की वह गायन के आधार पर ही की होगी। जहां मात्राओं की कमी ज़्यादती को आलापों या स्वरों के दीर्घ या ह्रस्व उच्चारण-गायन द्वारा भी पूरी की जाती होगी और उस हिसाब से उसकी रचना विलक्षण नहीं तो और क्या है...? ,

आज के इस भागा-दौड़ी जीवन के माहौल में, खोगल के दौरान की चिप्यक्सि और कुस के बाद का 'पिस-केन'-अतिथि-भोज, का दौर लगभग समाप्त है। इस प्रथा को खत्म करने में काफी हद तक हाथ 'टी.वी.' का है। घर-घर में टी.वी. की वजह से सामाजिक मेलजोल काफी हद तक कम हो गया है।

खोगल और कुस की समाप्ति के बाद गांव का 'त्राह्खण' अर्थात् बढ़ई ब्यूंस की सूखी लकड़ी से बनाई गई 'त'कुड़ि'-छोटी और पतली तकली, और 'पं'ङु'-बड़ी और मोटी तकली, के साथ लेकर और लुहार भी 'चे'ब' अर्थात् छोटी सुई, 'थपक' अर्थात् बड़ी या मोटी सुई और 'थोम्बु' अर्थात थ्सकु (छ्कु) चा, नमकीन चाय आदि उडेलने की कड़छी और 'डङु' अर्थात् पानी आदि उडेलने की बड़ी कड़छी लेकर घर-घर आया करते थे। ये दोनों अपने काम के बदले आटा या अनाज, चावल, दाल, सब्ज़ी और तेल और मक्खन-घी आदि ले जाया करते थे। वैसे लुहार को अनाज की मण्डाई के समय हर घर से अनाज के एक 'पूले' का बोझा- जितना वह बिना किसी की सहायता के उठा सकता था उतना, दिया जाता था। कई बार लुहार का 'फुत्स'अ' (फुच़ः) अर्थात् पूलों की ढेरी सबसे बड़ी हो जाती थी। उनको 'जस-तुङ' अर्थात् 'खाना-पीना' दिया जाता था। यह लेन-देन के ज़रिये से आपसी निर्भरता का उदाहरण था। किंतु यह प्रथा अब समाप्त हो गई है। ग्रीष्म ऋतु के आते ही त्राह्खण हल के 'फाह्ल' अर्थात् फल को पुनः लगा कर, 'ओक्ठेन' अर्थात् कुदाली और 'सुरमो' अर्थात निराई-गुड़ाई की छोटी नुकीली कुदाली और कही आदि के नये दस्ते लगा देता तथा लुहार सभी कृषि के औज़ारों की मुरम्मत अर्थात् 'संज़ि' कर देता था, जिस के लिए कोयले का इंतज़ाम हमें कर के देना पड़ता था या फिर उसके 'ठीहे' अर्थात् निहाई पे रखे गर्म औज़ारों पर 'घण' की चोट मारनी पड़ती थी। कभी-कभार कुछ और लोग भी आया करते थे जो बांसुरी बजाया करते थे या फिर नगाड़े से कुछ राग भी बजाया करते थे। एक 'खोखू' जी और एक 'प्य'रू' जी अर्थात 'प्यारे राम' या फिर 'रेबागि त्रिशाह्ण कुल्ह्राड़' अर्थात् त्रिलोकनाथ मन्दिर के नगाड़ा-वादक आया करते थे। ये नगाड़े पे या बांसुरी पे राग बजाते थे और आटा या अनाज, बगैरह इकट्ठा कर के ले जाया करते थे। गर्मियों में गांव-गांव 'बे'त'अ' अर्थात नाचने-गाने-बजाने वाले लोक-कलाकार आया करते थे। जिनमें शहनाई वादक धनीराम, अचि त्सिलि (च़िलि) ड्रोल्म'अ और उनके बच्चे-बच्चियां तथा नगाड़ा-वादक 'काणे बेत'अ' आदि होते थे। जिस घर में पुत्र जन्मा हो उनसे एक-एक भेड़ और खाना-पीना मांगते। उनके आंगन में या फिर घर में खूब नाच-गाना होता। लोग रात-रात भर उनके नाच-गाने में मस्त रहते। ''काअश्मिर की कली हूं मैं, मुझ से ना रूठो बाअबू जी, रूठ गई तो फिर ना खिलूंगी, कबि नईं कबि नईं काअबि नईं '' ... अचि त्सिलि ड्रोल्म'अ का 'द'ब' अर्थात 'डफ' की आवाज़ और उनकी बेटियों द्वारा गाये गये गीत के ये बोल शायद बहुत सारे लाहुली कानों में अभी भी गूंजते होंगे, और साथ में सलवार कमीज़ क्योंकि उस दौरान लाहुल में सलवार-कमीज़ का रिवाज़ नहीं था, पहनी हुई दो बेटियां इस गाने पे अपने अंदाज़ में थिरकतीं थीं ये सभी जो उस ज़माने के लाहुली समाज को रोमांचित करने वाले लोक-कलाकार थे। एक तरह से 'लोलीबुड'- बतौर मज़ाक यह शब्द प्रयोग कर रहा हूं, के कलाकार समझिए। धनी राम जी एक जबरदस्त शहनाई वादक और कलाकार था, जिससे पैसे वसूलने हों, उसकी ओर शहनाई का रूख अचानक मोड़ कर, भीड़ में दर्शकों के बीच उस व्यक्ति के सामने जाकर ज़ोर से बजाने लगता, बेचारा मूक दर्शक आवाक् रह जाता और दो चार रुपये फैंकने के लिए मजबूर हो जाता था। क्योंकि पूरी भीड़ की नज़र उनकी ओर होने पर वह झेंप भी जाता और नज़रों से बचने के लिए कुछ पैसे फैंकने ही पड़ते थे। कई बार उधार लेकर भी।

गर्मियों में ही कई बार लाहुली लोग जो चम्बा में बसे हुए थे वे वहां के कलाकारों से जो 'त्सेउं-त्सेउं (च़ेऊं-च़ेऊं)- रुवाना, और टम्म-टम्म-खजरी, 'बजाना उनसे सीख कर लाहुल आया करते थे। ये लोग कुछ ऐसे गीत गाया करते थे, 'रामा ओ मेरे जोगणुआ ओ' या फिर ''नाच मेरी घूंघरी ए, इस'अ ढोलकिरे ताना ओ।'' या फिर ''प्यारी भोटडी ए ..'' जिन की स्वर-लहरियां और इन दो वाद्य-यंत्रों की रुहानी आवाज़ सभी लाहुलियों के अंतःकरण में अब भी गुंजायमान अवश्य ही होते होंगे। इनके गायन और वादन में एक अजीब केफियत और गज़ब की मिठास थी - 'र्हे'ट्रङ जे'न्जि' यानी कर्ण-प्रिय, और ढोलकी के बजाय रूवाना और खजरी, ये गायक स्वयं ही बजाया करते थे। ये रात-रात भर गीत सुनाते थे। ज़्यादातर धार्मिकता का पुट लिए हुए गीत हुआ करते थे। इस संगीत में बहुत आकर्षण था। क्योंकि चम्बियाली गीत बहुत ही रसीले होते हैं। शायद लाहुलियों के लिए नया संगीत जिससे वे पहले परिचित नहीं थे। गांव का गांव उनको सुनने के लिए इकट्ठा हो जाया करता था। दर्शकों या श्रोताओं में ज़्यादातर औरतें हुआ करती थीं। कुछ लोग लुगड़ी भी पी रहे होते। कुछ को चाय पिलायी जाती। कुछ लोग इन गीतों के धुन पर थिरकने भी लगते थे। ये गायक-वादक विशेषतः अवर्ण समुदाय के ही हुआ करते थे।

शीत ऋतु के आगमन के दौरान, गांव के एक समुदाय के

बांसुरी-वादक इकट्ठे होकर वादन के रागों को सीखा करते थे। खास कर शाम को। एक 'बिणु जी'- विनय राम, जो डाकखाने में 'रन्नर' डाक-वाहक, का काम करते थे। शराब के भी वे कुछ-कुछ शौकीन थे। उनके पास एक-दो गांव के शागिर्द इकट्ठा हुआ करते थे। वे सभी बांसुरी की तान में मस्त होकर अपनी ही धुन में खोये हुए रहते थे। तात्पर्य यह कि उस दौरान बांसुरी-वादन गुरु-शिष्य परंपरानुसार सीखा-सिखलाया जाता था।

इस तरह, वरदान और अभिवादन का यह पावन पर्व जो लक्ष्मी-पूजन से आरंभ होकर, आपसी मेल-मिलाप और सद्भाव के साथ समाप्त होता है। जिसे एक प्रकार से नव-वर्ष के शुभागमन का पर्व भी माना जाता है। इस दौरान के मेल-जोल से एक-दूसरे के प्रति भ्रातृत्व-भाव और सहयोग की भावना पुष्पित और पल्लवित तो होती है। सांस्कृतिक मूल्यों के आदान-प्रदान और धार्मिक अनुष्ठान के साथ-साथ सांस्कृतिक ज्ञानार्जन, परिमार्जन और धरोहरों के संरक्षण का कार्य भी स्वतः ही हो जाता है।

आइये हमारे देश के लोकप्रिय राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी के शब्दों से इस लेख का समापन करते हैं....., ''गांव के लोगों को थोड़ा सा मौका मिले तो वे नाच-गा लेते हैं। इससे उनके कठिन जीवन को सरल करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार ग्राम्य-परिवेश हमारी संस्कृति को बचाए रखने और परिपोषित करने में सहायक होता है। चित्रकला, नृत्य, और गीत-संगीत का विकास ग्राम्य-संस्कृति की ही देन है। यदि समाज औसत दर्जे की हो तो इन विधाओं का स्तर भी औसत दर्जे का ही होता है। यदि समाज ज्ञान-वान और सम्पन्न हो तो ये सभी कलाएं भी उन्नत होतीं हैं।

कलाकार ज्ञात चीज़ों को सांझा करता है और अज्ञात अनायास ही अभिव्यक्त हो जाता है। कला सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। इससे प्रेम, करुणा, शांति और हास्य के भाव सम्प्रेषित होते हैं। कला जीवन को उन्नत करती है। ग्राम्य जीवन उस पुष्प की तरह है जो अपनी सुगन्ध और मकरंद को चारों तरफ बिखेरता है और सबको मदमस्त कर देता है। पर अपने सुंदर गुणों पर कभी इतराता नहीं। वह तो एक अबोध बालक के समान होता है ।''

गाहर/बुनन इलाके का हल्डा व कुंस् उत्सव

हल्डा फैंकते हुए गाहर के लोग

वङचुग शास्त्री

सर्व प्रथम हल्डा के दिन प्रातः 5-6 बजे शिस्कर अपः (धन देवी) की पूजा अर्चना की जाती है। दोपहर 11-12 बजे (शागुण) छोचिस कर शिस्कर अपः को कुद (प्रसाद) चढ़ाया जाता है। उसमें चांदी के प्याले में केन (सत्तू द्वारा बनाया जाने वाला व्यञ्जन) पट्टनी लोग दू कहते हैं, को डाल दिया जाता है। सायं हल्डा फैंकने से पूर्व इष्ट देव की पूजा अर्चना की जाती है। रकेन चपोर जो चांदी का प्याला होता है उससे पूजा अर्चना की जाती है। हल्डा फैंकने से पूर्व यह विशेष ध्यान दिया जाता है कि जो व्यक्ति हल्डा फाड़ता है उसके मां-बाप जीवित होना अनिवार्य है और राशि के आधार पर हल्डा फाड़ता है। जब हल्डा निकाला जाता है, वह घर का विशेष व्यक्ति अपनी प्राचीन सांस्कृतिक वेश-भूषा में होता है।

हल्डा फैंकते समय वह व्यक्ति रकेन चपोर और मांस का टुकड़ा साथ ले जाता है। हल्डा एक प्रकार का शुग-शुग (टाड़ा) होता है। हल्डा को फैंकते समय कई प्रकार के गाली-गलोच इत्यादि देकर शुग-शुग फैंका जाता है। हल्डा फैंकने के पश्चात् रकेन चपोर में जो केन है उस से गांव के देवी-देवता की पूजा अर्चना कर उसमें बर्फ भर दिया जाता है। उसके ऊपर शुर का टुकड़ा लगा दिया जाता है। सभी ग्राम वासी अपने-अपने घर वापिस चले जाते है। हल्डा फैंकने वाला व्यक्ति सबसे अन्त में जाता है। उसे घर की औरतें द्वार बन्द कर बाहर ही रोक देती हैं। उससे प्रश्नोत्तर के माध्यम से वर मांगती है। जैसे क्या लाए हो? सोना, चांदी, हीरा, मोती, फिरोज़ा इत्यादि लाया हूं इस प्रकार उत्तर देता है। अन्त में सब कुछ लाया हूं कहता है और द्वार खोल दिया जाता है।

दूसरे दिन से कुंस आरम्भ हो जाता है। उस दिन को शिल कहते हैं। उस दिन घर का कोई भी व्यक्ति घर से बाहर नहीं निकल सकता और न ही शोर किया जाता है। न ही किसी व्यक्ति का नाम लिया जाता है। ऐसा मानना है कि यदि कोई शोर करे या व्यक्ति का नाम ले तो शिस्कर अपः रूठ कर चली जाएगी। प्रातः 5-6 बजे नलके में जा कर जल देव की पूजा कर घर को जल लाया जाता है। मानना है कि उस जल में शिस्कर अपः द्वारा दिया गया वर आता है। उसे

सर्वप्रथम शिस्कर अपः और इष्ट देव को चढ़ाया जाता है। गांव करदङ में इस दिन से च़ोरो यानि योर उत्सव प्रारम्भ हो जाता है।

तीसरे दिन को छुद के नाम से जाना जाता है। उस दिन भी शिस्कर अपः की पूजा अर्चना की जाती है। दिन को 12 बजे मुर निकाला जाता है। मुर एक प्रकार का मक्खन से बनी छोटी-छोटी रोटी की तरह होता है कांस्य की थाली में मुर के टुकड़ों के ऊपर रख दिया जाता है और उसके ऊपर छोटा सा मक्खन का फोचि़ (पटनी मरदन्ज़ः) रख दिया जाता है। मुर घर के हिस्सों व पानी के हिसाब से बनाया जाता है। उसे प्रातः 4 बजे बनाया जाता है। उस दिन आटे का घर के पालतु पशुओं का फोचि़ (दन्ज़ा) बनाया जाता है।

उसकी पूजा अर्चना कर घर में सजाया जाता है। मुर की पूजा अर्चना ग्राम देवी-देवता को करने के पश्चात् तग्स (तोहफा) का दौर शुरू हो जाता है। जिसे हर घर में हर व्यक्ति को प्रेषित करते हैं। जब एक-दूसरे आपस में मिलते हैं तो जू का सम्बोधन कर आदर व्यक्त करते हैं। यह क्रम चलता रहता है। ऐसा क्रम चौथे और पांचवें दिन भी चलता रहता है। मगर मुर नहीं चढ़ाया जाता।

छठा दिन को वचि़ श्रिचिस कहा जाता है। जिसे लोग ऊन कात कर उसका गोला नुमा बनाते हैं। ऐसा मानना है कि जितना गोला बनाया जाए उसकी आयु भी उतनी ही दीर्घ होती है। उस दिन भी शिस्कर अपः को फुद इत्यादि चढ़ाया जाता है और पूजा-अर्चना की जाती है।

सातवें दिन भी प्रातः से सायं तक शिस्कर अपः की पूजा की जाती है। उस दिन को शिस्कर अपः प्रचिस कहा जाता है। यानि धन देवी का प्रस्थान। सायं काल शिस्कर अपः को रीति रिवाज़ अनुसार बगशचि़ (मारचू) और मरज्वग् (म्हरपीणि) साथ लेकर ग्राम से कुछ दूरी तक छोड़ने जाते हैं। शागुण इत्यादि कर उसे आदर पूर्वक विदा किया जाता है। रात्री को ग्राम वासी एकत्रित हो कर गोचि़ की तिथि निश्चित करते हैं। गोचि़ की तिथि भोट पञ्चांग अनुसार 25 तारीख छेपा ञेरङः से पूर्व करना अनिवार्य है। इस प्रकार गाहर (बुनन) का हल्डा व कुंस् समाप्त होता है। इस दिन को लस्पा केकेर भी कहा जाता है।

रा.व.मा.वि. मडग्राम

कुंस के मौके पर पूजा की तैयारी

फो-बर-दो-चोग या आमाशय पर पत्थर फाड़ अनुष्ठान

मोहन लाल रेलिङ्पा

फो-बर-दो-चोग या आमाशय पर पत्थर फाड़ अनुष्ठान, एक जनजातीय धार्मिक नाट्य है, जिस का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा, आस्था और रुचि पैदा करना है।इस धर्म संबंधी अनुष्ठान को आज भी स्पीति के पिन वैली के बुछेन कलाकार जो तिब्बत के महासिद्ध थङ तोन ङल्पो, के अनुयायी माने जाते हैं, आज भी पश्चिमी हिमालय के लद्दाख, किन्नौर और लाहुल-स्पीति में करतब दिखाते नज़र आते हैं। इस का प्रादुर्भाव तब हुआ, जब बौद्ध धर्म के कट्टर दुश्मन लङदर्मा ने नौवीं शताब्दी में तिब्बत तथा अन्य क्षेत्रों में बौद्ध धर्म को पूर्णतः नष्ट करने का अभियान चलाया हुआ था। तब थङ तोन ङल्पो ने बौद्ध धर्म की गिरती साख को भांपते हुए नाट्य प्रचार को सशक्त माध्यम बनाकर पुनर्जागरण के रूप में शुरू किया। बाद में लामाओं ने तांत्रिक विद्या का समावेश कर इसे दिवंगत आत्माओं को शांति दिलवाने, भूत प्रेतों को दूर भगाने तथा रोगों का निदान कराने का माध्यम भी बनाया। इस तांत्रिक लोकगायक तथा लोकनाट्यकार कलाकारों में दैविक शक्ति होती है, और जो पत्थर जिसे अनुष्ठान द्वारा, दो फाड़ किया जाता है, उसे महामारी की रूह का प्रतीक माना जाता है। इस पत्थर को लोग पवित्र मानते हैं, ओर उस के टुकड़े अपने घरों की दीवारों में लगाते हैं। वो इन टुकड़ों की पूजा भी करते हैं। बुछेन कलाकार बौद्ध धर्म के इतिहास, गाथाओं एवं परम्पराओं की प्रस्तुति कर श्रोता तथा दर्शकों को मूल्यवान शिक्षा भी देते हैं। फो-बर-दो-चोग अनुष्ठान का मुख्य गुरु लोछेन होता है, जो भोटी भाषा का ज्ञाता, शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ, आध्यात्मिक शक्ति से लबरेज़, पूजा विधि, साधना तथा वाद्य यंत्रों, नृत्य शैलियों के ज्ञान से परिपूर्ण हो। बुछेन का वाद्य यन्त्र अत्यंत आकर्षक होता है। बुछेन के वाद्य यंत्रों में मणिखोरलो, बुग्जल, ट्रिलु, दोरजे, डमरू, माला कॉम्पो, पियङ, तथा कङलिङ, मुख्य रूप से पत्थर तोड़ते समय, भूत प्रेतों, डाकिनियों के कुप्रभाव से बचने के लिए प्रयोग होता है। कङलिङ गर्भवती मृत स्त्री की टांग की हड्डी का बना होता है। खेल आरम्भ करने से पहले मंच पर थङ तोन ङल्पो कि मूर्ति को स्थापित कर पूजा पाठ किया जाता है। प्रार्थना के तुरंत बाद लोछेन शंख बजा कर खेल का आरंभ करता है। तभी दो कलाकार बहुत बड़ा पत्थर उठा कर मंच के सामने रख देते है, तथा लोछेन वस्त्राभूषण एवं पंचरंगी टोपी पहन कर पत्थर पर मोटी रेखाओं द्वारा मानव आकृति खींचता है, और धूप जला कर उस के गिर्द नाचना आरम्भ कर देता है। लोछेन नाचता हुआ, मुंह पर दोनों गालो के आर पार एक बड़ी सुई गुजारता है। लोछेन कमर तक नंगा हो कर तथा आभूषण उतार कर तलवार की मुठ को धरती पर टिकाता और सीधी नोक पर नाभी टीका कर दोनों टांगों तथा बाजुओं को हवा में फैला कर संतुलन बनाता है। दर्शक ओम मणि पद्मे हूँ जपते हुए ये नज़ारा देख हतप्रद रह जाते हैं। तलवार नृत्य समाप्त होते ही पत्थर तोड़ने और दुरात्मा भगाने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। आकाशीय देवताओं को आह्वान करने के पश्चात लोछेन अपने छुरे से कई बार स्वास्तिक चिह्न बना कर मायावी पत्थर पर प्रहार कर आर पार घुमाता है, तथा मंत्र द्वारा उसे बाहरी कुप्रभाव से मुक्त कराने की कोशिश करता है। इसी बीच एक बुछेन कलाकार पीठ के बल लेट जाता है, और उस के आमाशय पर पत्थर रख कर पतला कपड़ा बिछाया जाता है। तभी लोछेन दैवीय शक्तियों से ओतप्रोत हो कर छोटे से पत्थर से पेट पर रखे बड़े पत्थर पर प्रहार करता है और बड़ा पत्थर कई टुकड़ों में फट जाता है। पत्थर फटते ही बुछेन कलाकार खड़ा हो जाता है, और दर्शक चारों दिशाओं से उस के नीचे रखे जौ के दानों पर टूट पड़ते हैं, क्योंकि मान्यता है कि ये जौ के दाने अनेक तरह के रोगों एवं कष्टों के निवारण के लिये उपयोगी होता है।

लाहुल–स्पीति में बौद्ध धर्म का इतिहास

© Rahul Rohel

विक्रम सिंह शाशनी

घंडाड़ गोम्पा, लाहुल

लाहुल और स्पीति भारत का एक ऐसा क्षेत्र जिसकी जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। ''यहां की संस्कृति यहां के लोगों का रहन सहन और यहां के लोगों का धर्म'', इनके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। मुझे आज अपनी संस्कृति के बारे में लिखने का मौका मिला, इसे मैं अपनी खुशकिस्मती मानता हूँ। लाहुल-स्पीति ने अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लद्दाखी साम्राज्य से अलग होने के बाद लाहुल कुल्लू के मुखिया के हाथों मे चला गया। सन् 1840 में महाराजा रणजीत सिंह ने लाहुल और कुल्लू को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया और 1846 तक उस पर राज किया। सन् 1846 से 1940 तक यह क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहा। सन् 1941 में लाहुल-स्पीति को एक उपतहसील बनाकर कुल्लू उपमंडल से संबद्ध कर दिया गया। 1960 में तत्कालीन पंजाब सरकार ने लाहुल-स्पीति को पूरे ज़िले का दर्जा प्रदान कर दिया और 1966 में पंजाब राज्य के पुनर्गठन के बाद लाहुल-स्पीति ज़िले को हिमाचल प्रदेश में मिला लिया गया।

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक भारत में भोट बौद्ध संस्कृति को सीमावर्ती बौद्धों ने ही सुरक्षित कर रखा है। यहां की संस्कृति का इतिहास हज़ारों साल पुराना है। लाहुल-स्पीति, लद्दाख, किन्नौर, सिक्किम, और भूटान, आदि के लोगों की एक ही संस्कृति है। यहां के लोगों ने अनेक कष्टों को सहते हुए अपनी संस्कृति को संभाल कर रखा है। सभी क्षेत्रों की तरह यहां के लोगों का धर्म भी बौद्ध धर्म ही है। हिमाचल प्रदेश में लाहुल-स्पीति तथा किन्नौर की संस्कृति एक अत्यन्त श्रेष्ट संस्कृति मानी जा सकती है। क्योंकि यहां की संस्कृति हज़ारों वर्षों पुरानी है। लाहुल तथा स्पीति दो अलग क्षेत्र हैं। अतः दोनों क्षेत्रों का इतिहास भी भिन्न है।

लाहुल

लाहुल भारत के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित विभिन्न सुन्दर घाटियों में से एक अत्यन्त ही सुन्दर घाटी है। इस घाटी को लाहुल कहने के पीछे मान्यता यह है कि यह प्रदेश आदि काल से देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों, और मनुष्यों की मिली जुली जातियों का संगम स्थल रहा है। इसलिए इसका प्रारम्भिक नाम ल्ह युल पड़ा। तिब्बती भाषा में ल्ह का मतलब देवता तथा युल का मतलब प्रदेश है, अर्थात् ल्ह युल का मतलब देवताओं का प्रदेश है। जिसे लोगों द्वारा लाहुल कहा जाने लगा। तिब्बती तथा लद्दाखी लोगों में यह गरजा नाम से प्रसिद्ध है। तथा कुछ लोग इसे करजा भी कहते हैं। गरजा शब्द गर तथा जा दो शब्दों की सन्धि से बना है। भोट भाषा में गर का अर्थ नृत्य तथा जा का अर्थ कदम है अर्थात् कदमों का नृत्य। यहाँ की सांस्कृतिक नृत्यों में कदमों का बहुत महत्व है। अतः इस क्षेत्र का नाम गरजा पड़ा। दूसरे शब्दों में करजा भी दो शब्दों के मेल से बना है। कर अर्थात् श्वेत तथा जा अर्थात टोपी। कहा जाता है कि प्राचीन काल मे लाहुल की संस्कृति में श्वेत टोपी का प्रचलन था। इसी कारण स्थानीय लोग इसे करजा कहने लगे।

विद्वानों के अनुसार लाहुल क्षेत्र में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पुरातत्विक प्रमाण ना के बराबर हैं। वर्तमान काल में त्रिलोकीनाथ मन्दिर के सामने कुछ प्राचीन काल के शिलापट्ट देखे जा सकते हैं। इन शिलापट्टों को देखकर प्रतीत होता है कि कभी वहां पर कोई विशेष विहार रहा होगा, जहाँ कालान्तर में केवल मन्दिर ही शेष रह गया है। वहीं पर खुदाई के समय शोधकर्ताओं को तल से आर्य अवलोकितेश्वर की एक मूर्ति भी प्राप्त हुई थी। तथा विद्वानों के अनुसार विहारों के अवशेष से यह भी प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में भिक्षु यहाँ निवास करते थे। और यहाँ बौद्ध परम्परा प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त लाहुल के कुछ अन्य स्थानों में भी बौद्ध धर्म के प्राचीन अवशेष प्राप्त होने के प्रमाण मिलते हैं। जैसे- गन्धोला के विहार का खण्डहर। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह भी कहा जाता है कि यहाँ कुक्कुट देश के राजा महाकप्पिन ने भगवान बुद्ध से अपने दर्शन स्थली होने के कारण एक स्मारक स्वरुप विहार का निर्माण करवाया तथा बौद्ध भिक्षुओं को इस स्थान पर रहने के लिए कठिनाई का सामना न करना पड़े इसलिए इस विहार की स्थापना की गई थी। भक्त गण जब भगवान बुद्ध के दर्शन करने जाते तो सुगन्धित पुष्प अर्पित करते थे। अतः सुगन्धित पुष्पों के परम्परा के कारण ही भगवान बुद्ध की कुटी गन्धकुटी कही जाने लगी। सम्भवतः भगवान बुद्ध की गन्धकुटी ही बोल चाल के प्रभाव के कारण ही पहले गुन्धकुटी और फिर गन्धोला में परिवर्तित हो गई। कहा जाता है कि इस मठ का निर्माण नवीं शताब्दी में किया गया था। यह विद्वानों का मत है।

इसके अतिरिक्त और भी कुछ बातें हैं जिनसे लाहुल में बौद्ध भिक्षुओं के आगमन का पता चलता है। अंग्रेज़ों के समय में गन्धोला के आसपास लोगों को एक पीतल का लोटा मिला था। कहा जाता है कि वह किसी भिक्षु का भिक्षा पात्र था। उस पर अंकित चित्रों के आधार पर विद्वानों ने इसे पहली शताब्दी से लेकर दूसरी शताब्दी के बीच का माना है। विद्वानों ने इसे बौद्ध भिक्षुओं का लाहुल के रास्ते तिब्बत की ओर जाने का प्रमाण माना है। कहा जाता है कि ईसा पूर्व कई बौद्ध भिक्षुओं को विभिन्न जगहों पर भेजा गया था। जिनमें से पाँच को हिमवत्त (हिमालय) क्षेत्र की ओर भेजा गया। इसी के आधार पर कहा जाता है कि शायद इन्हीं में से किसी का भिक्षा पात्र वहाँ पर रह गया था। तथा इसे लाहुल में बौद्ध भिक्षुओं के होने का प्रमाण भी माना जाता है।

इस प्रकार के अनेक विवरण प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। विद्वानों के अनुसार ऐतिहासिक तथ्यों को जानने के तीन स्रोत कहे गए हैं। पुरातत्व, शास्त्र और परम्परा। इन स्रोतों से लाहुल के विभिन्न स्थानों, नदियों, तथा जातियों के बारे में जो जानकारी प्राप्त होती है, उनके आधार पर इतना तो कहा जा सकता है कि इस घाटी में बौद्ध धर्म का प्रवेश ईसा पूर्व से होकर वर्तमान काल तक इसका विस्तार होता रहा है।

स्पीति

स्पीति भारत और तिब्बत की सीमा पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है। जो आजकल हिमाचल प्रदेश का अभिन्न अंग है। किन्तु इस प्रदेश की जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। शायद यही कारण है कि यहाँ के लोगों ने अपनी संस्कृति और अपने रीति-रिवाज़ों को आज तक संभाल कर रखा है। संस्कृति के मामले में स्पीति अभी भी कहीं अधिक समृद्ध क्षेत्र है। स्पीति के इतिहास की बात करें तो पता चलता है कि स्पीति ने भी कई उथल पुथल झेले हैं। कभी तिब्बत के राजाओं के कारण, कभी लद्दाख के, कभी बुशहर, कभी कुल्लू के राजाओं के आक्रमणों के कारण। परन्तु इसकी संस्कृति पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह क्षेत्र अपनी सांस्कृतिक झलक से आज भी हमें आकर्षित करता है।

विद्वानों के अनुसार इस पर सबसे पहले पश्चिमी तिब्बत के राजाओं की नज़र पड़ी। क्योंकि आज भी पिन घाटी में बुछेन लामाओं द्वारा तिब्बत के राजा पर आधारित नाटक प्रस्तुत किया जाता है। यह नाटक तिब्बत के तैंतीसवें राजा स्रोङ-च़न-गम्पो के जीवन पर आधारित है। ज़्यादातर विद्वान उनका शासन काल 617 ई० से 650 ई० तक मानते हैं। जिनके शासन काल में ही तिब्बत में बौद्ध धर्म की शुरुआत हुई थी। विद्वानों के मतानुसार स्पीति में बौद्ध धर्म की उत्पत्ति तथा प्रसार में आचार्य रत्नभद्र का नाम अविस्मरणीय है। भोट भाषा मे उन्हें लोच़ावा रिन्छेन ज़ङ्पो के नाम से जाना जाता है। अतः स्पीति के इतिहास के बारे में लिखने से पहले लोच़ावा रिन्छेन ज़ङ्पो के बारे में थोड़ा विवरण देना आवश्यक है। लोच़ावा रिन्छेन ज़ङ्पो हङरङ वादी के सुमरा गांव से थे। जो तब गुगे राज्य का एक भाग था। 1937 में राहुल सांकृत्यायन अपनी यात्रा के दौरान कश्मीर के रास्ते हङरङ वादी से होकर लद्दाख व स्पीति में आए थे। उन्होंने अपनी यात्राओं के वर्णन में बताया है कि जब वे तिब्बत से स्पीति आये थे तो किन्नर गावों से होकर लौटे थे।

स्पीति को गोम्पाओं तथा मठों का देश कहना भी अनुचित नहीं है। जहाँ पर बौद्ध भिक्षु बौद्ध धर्म का अध्ययन करते हैं। इनमें से ताबो, डंखर, कीह्, करजेग, ल्ह-लुङ, गुङरी आदि प्रमुख हैं। विद्वानों के अनुसार ताबो गोम्पा लोच़ावा रिन्छेन जङ्पो द्वारा सन् 996 में देवी देवताओं की कृपा से बनाया गया था। उनकी योजना 108 गोम्पा बनाने की थी किन्तु सुबह होते तक सिर्फ आठ ही बना पाए। ताबो गोम्पा में हर साल सितम्बर में (छम) मुखौटा नाच भी होता है। कहा जाता है कि राजा यिशे होद ने रिन्छेन जङ्पो को 21 युवकों के साथ कश्मीर में संस्कृत पढ़ने के लिए भेजा था तथा बौद्ध ग्रन्थों को लाने का कार्य भी दिया था। बीमारी के कारण 19 युवक काल का ग्रास हुए केवल रिन्छेन जङ्पो तथा लेग-पई शेरब ही शिक्षा पूर्ण कर अपने देश लौट पाये थे। रिन्छेन जङ्पो ने कंग्युर के कई ग्रन्थों

डंखर गोम्पा/किला, स्पीति

का संस्कृत से तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। सन् 1000 में गुगे राज्य में बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान हुआ।

किद्-दे-ञिमा-गोन के शासनकाल में स्पीति लद्दाख का एक हिस्सा था। ञिमा-गोन ने अपने राज्य को अपने तीन बेटों के बीच बांट दिया। बड़े लड़के को लद्दाख, दूसरे को गुगे और पुरङ, सबसे छोटे को स्पीति तथा ज़ंस्कर दिया। देचुक गोन जो सबसे छोटा था। उसने अपने राज्य की सुरक्षा के लिए कई कदम उठाए। उसने राज्य के कुछ गावों को गोम्पाओं तथा कुछ स्थानीय लोगों को बांट दिया। दक्षिणी स्पीति पर कई वर्षों तक गुगे राजाओं का राज रहा। विद्वानों ने गोन वंश के राजाओं का भी वर्णन किया है। इनमें प्रमुख किद्-दे-ञिमा-गोन का वर्णन मिलता है। यह राजा लङ-दरमा का पोता था। इसके बाद लद्दाख और ल्हासा की लड़ाई का भी स्पीति की संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा। इसके बाद कुल्लू के राजा मानसिंह ने स्पीति पर कब्ज़ा किया तथा स्पीति को कुल्लू राज्य में सम्मिलित किया गया। सन् 1941 मे लाहुल के साथ मिलाकर इसे उपतहसील का दर्जा दिया गया।

- शास्त्री द्वितीय वर्ष, सारनाथ, वाराणसी

कीह गोम्पा, स्पीति

लाहुल में पर्यटन की दस्तक

विक्रम कटोच

आजकल लाहुल में हर आदमी पर्यटन की बात कर रहा है। रोहतांग टनल के खुल जाने के बाद लाहुल में पर्यटन गति पकड़ेगा। इस लिहाज़ से युवा पीढ़ी को रोज़गार के नए अवसर प्राप्त होंगे। भारत में पर्यटन सबसे बड़ा सेवा उद्योग है। इसका राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में 6.23 प्रतिशत और भारत के कुल रोज़गार में 8.78 प्रतिशत का योगदान है। पर्यटन किसी भी देश की आर्थिकी में अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकता है। इसे अगर हम लाहुल के सन्दर्भ में भी देखें तो पर्यटन लाहुल की आर्थिकी पर भी गहरा प्रभाव डालेगा।

मेज़बानी हमारी संस्कृति का एक हिस्सा है। अतिथि देवो भवः की तर्ज़ पर मेहमान को हमारी संस्कृति में भी भगवान का दर्जा दिया गया है। पर्यटन के क्षेत्र में अच्छी मेज़बानी से किसी भी जगह की अच्छी तस्वीर पेश की जा सकती है। इस तरीके से बहुत से लोगों को लाहुल में आने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

स्पेन, इटली और चीन ऐसे देशों की सूची में प्रमुख पांच में रहते हैं जहां विश्व भर में सबसे ज़्यादा पर्यटक घूमने जाते हैं। इन देशों में पर्यटक क्यों घूमने जाते हैं, अगर इस बात पर गौर करें तो लाहुल के सन्दर्भ में हमें कई सवालों के जबाव मिल जाएंगे, साथ ही साथ लाहुल में पर्यटन को बढ़ावा देने की कोशिश को सही दिशा में ले जाया जा सकता है।

चीन की अद्भुत प्राकृतिक सुन्दरता, वहां की संस्कृति जोकि शहरीकरण के बावजूद ज़िन्दा है, तथा पर्यटकों को मिलने वाली सुख-सुविधाओं की वजह से दुनिया भर के पर्यटक चीन की तरफ खिंचे चले आते हैं। चीन में स्वच्छता का बेहद ध्यान रखा जाता है।

शहंघाई और बीजिंग जैसे शहर पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। चीन एक पर्यटक स्थल के रूप में भारतीयों में भी काफी प्रसिद्ध है। वर्ष 2017 में 4.7 मिलियन भारतीयों ने अमेरिका, इग्लैंड और चीन को अपने गन्तव्य स्थान के रूप में चुना। यह संख्या साल दर साल बढ़ती ही जा रही है।

दूसरी तरफ अगर हम इटली की बात करें तो यह देश ऐतिहासिक रूप में काफी महत्वपूर्ण देश है। यहां 50 से ज़्यादा यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज स्थल हैं। इटली की राजधानी रोम है जो कि 753 ई.पू. में स्थापित प्राचीन शहर है। यह शहर सिर्फ इटली की ही नहीं पूरे रोमन सभ्यता की राजधानी रही है, जो कि लगभग 2500 साल पुरानी सभ्यता मानी जाती है। विश्व भर में इटली को इसके ऐतिहासिक महत्व के लिए तवज्जो दी जाती है।

स्पेन के सुन्दर शहर और यहां का लाइफ स्टाईल देखकर दुनिया भर के पर्यटक स्पेन की ओर खिंचे चले आते हैं। स्पेन की खूबसूरती बॉलीबुड की कई फिल्मों में हमेशा देखने को मिलती है। बार्सिलोना, मैड्रिड और ग्रनाडा यहां के प्रमुख शहर हैं जहां पूरे साल नई-नई डिशेज़, फैशन और म्यूज़िक की धूम रहती है। ग्रनाडा शहर बर्फ के ढके पहाड़ों और खूबसूरत समुद्री तटों के लिए जाना जाता है।

किसी भी स्थान को पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि वहां के लोगों को उस जगह के इतिहास, संस्कृति और रीति रिवाज़ों की अच्छी समझ हो।

भारत में पर्यटन का व्यवसाय दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। विश्व पर्यटन काऊंसिल के अनुसार वर्ष 2018 में पर्यटन ने भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 9.2 प्रतिशत का योगदान दिया जो कि 16.91 लाख करोड़ रुपये के बराबर है। पर्यटन से भारत में 42.673 मिलियन लोगों को रोज़गार मिला जो कि भारत के कुल रोज़गार का 81 प्रतिशत है। महाराष्ट्र, तमिलनाडू, दिल्ली, उत्तरप्रदेश और राजस्थान ऐसे राज्य हैं जहां विदेशी पर्यटकों की भरमार लगी रहती है। हिमाचल प्रदेश, केरल और कर्नाटक भी इस सूची में हमेशा जगह बनाते हैं। वहीं लद्दाख, कश्मीर और पश्चिम बंगाल में भारतीय पर्यटकों की भरमार लगी रहती है। उत्तर पूर्व के राज्यों जैसे सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मेघालय और असम में भी बहुत से पर्यटक जाने लगे हैं।

जहां तक हम लाहुल-स्पीति की बात करें तो स्पीति पर्यटन के क्षेत्र में लाहुल से काफी आगे निकल चुका है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्पीति पूरा साल पर्यटकों के लिए खुला रहता है। कुन्ज़ोम दर्रा बंद होने के बावजूद शिमला की तरफ से स्पीति पहुंचा जा सकता है। स्पीति एक पर्यटन स्थल के रूप में देश-विदेश के पर्यटकों में अपना नाम कर चुका है। स्पीति अपनी प्राकृतिक सुन्दरता व धर्म, यहां के मठों और मिलनसार लोगों की वजह से बहुत मशहूर है। यहां के बौद्ध मठों में कीह, किब्बर और डङ्खर मठ विश्व प्रसिद्ध हैं।

लाहुल में पर्यटन अपनी दस्तक दे चुका है। बाहर से देखने पर पर्यटन की दुनिया बहुत ही खूबसूरत नज़र आती है जिससे इन्कार भी नहीं किया जा सकता है। लेकिन किसी भी स्थान पर पर्यटन शुरू करने से पहले पर्यटन के नकारात्मक पहलुओं पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है।

पर्यटन की वजह से बहुत सी चीज़ों का बाज़ारीकरण हो सकता है। उस बाज़ारीकरण में संस्कृति, रीति-रिवाज़, इतिहास, खान-पान और पर्यावरण जैसी चीज़ें स्वतः ही शामिल हो जाती हैं। पर्यटन के साथ आने वाले बाज़ारीकरण को हम दो तरीके से देख सकते हैं: -

1. बज़ारवाद हमारे विलुप्ति के कगार पर खड़ी संस्कृति और रीति-रिवाज़ों को पुनर्जीवित करेगा।
2. बज़ारवाद के आने के बाद अगर हमारी संस्कृति और रीति-रिवाज़ पुनर्जीवित होते हैं तो वह किस रूप में बाहर निकल कर आएगी? यह भी मुमकिन है कि हमारे रीति-रिवाज़ और संस्कृति उत्पाद बन कर न रह जाएं या ऐसा भी हो सकता है कि वह पर्यटकों को लुभाने के लिए दिखावे की वस्तु न बन कर रह जाए।

पर्यटन आने वाले समय में लाहुल में रोज़गार लाएगा। उस क्षेत्र में ज़्यादा से ज़्यादा ज्ञान प्राप्त करें। इस क्षेत्र में ज्ञान का अभाव आपकी संस्कृति, पर्यावरण और यहां रहने वाले लोगों पर बुरा प्रभाव डाल सकता है। पर्यटन क्षेत्र में सही ज्ञान युवाओं को उस क्षेत्र में पर्यटन सम्बन्धित गतिविधियों को सही तरीके से करने में मदद करेगा। युवाओं को चाहिए कि देश में होने वाले पर्यटन से सम्बन्धित पाठशालाओं में भाग लें। सोशल मीडिया की मदद से पर्यटन के क्षेत्र में ज़्यादा से ज़्यादा ज्ञान अर्जित करने की कोशिश करें। गांव में पर्यटन के बारे में सबसे चर्चा करनी चाहिए। गांव के बाशिंदे गांव में कैसा परिवेश चाहते हैं इस बारे में चर्चा की जानी चाहिए।

लाहुल के संदर्भ में पर्यटन को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। सिर्फ और सिर्फ केम्पिंग ही पर्यटन नहीं है। पर्यटन एक व्यापक विषय है जहां केम्पिंग पर्यटन का एक छोटा सा विषय है। लाहुल एक पहाड़ी क्षेत्र है जहां पहाड़ से जुड़ी हुई साहसिक गतिविधियों पर ध्यान दिया जा सकता है।

लाहुल में पर्यटन के क्षेत्र में अनेक सम्भावनाएं हैं। बशर्ते पर्यटन को सिर्फ आर्थिकी से जोड़ कर न देखा जाए।

पर्यटन के क्षेत्र में हितधारक कौन?

1. स्थानीय समुदाय
2. पंचायत+युवा+महिला
3. टैक्सी यूनियन
4. प्रशासन
5. पर्यटक
6. सरकारी विभाग
7. पर्यटन मंत्रालय
8. पर्यावरण
9. वन विभाग
10. ट्रेवल एजेन्सी यूनियन
11. होटल ऐसोसिएशन
12. बैंक
13. अन्य।

ऊपरलिखित भागीदारों के अलावा भी बहुत से भागीदार हो सकते हैं, सबसे ज़रूरी यह है कि सबकी ज़िम्मेदारी पर्यटन को लेकर सुनिश्चित हो ताकि इनके बीच में तालमेल अच्छा हो। यदि सभी भागीदारों में तालमेल अच्छा होगा तो पर्यटन के क्षेत्र में किए गए कार्यों और प्रयासों में सफलता मिलेगी।

पर्यटन को अगर व्यापार की नज़र से देखा जाए तो पर्यटन एक युद्ध स्थल भी बन सकता है जहां व्यापारियों के हितों का टकराव होता है। व्यापारियों का सिर्फ एक ही मकसद होता है, वह आर्थिक रूप से अपने आप को सबसे ज़्यादा मज़बूत बनाना चाहता है। वह अपना आर्थिक हित किसी के साथ नहीं बांटना चाहता। यह सोच क्षेत्रवाद को बढ़ावा देती है। यही सोच देहव्यापार और नशाखोरी को भी निमंत्रण देती है। यह भारत ही नहीं विश्व के कई जगहों पर जहां-जहां पर्यटन गया, वहां ऐसा हुआ है। इससे बचने के लिए बुनियादी तौर पर युवाओं को अपनी सोच को सशक्त करना होगा। धैर्य और संतोष रखते हुए इन बुरी चीज़ों से बचा जा सकता है।

रोहतांग टनल खुलने के बाद लाहुल के हर नागरिक की ज़िम्मेदारी में बहुत बढ़ौतरी होगी। इस ज़िम्मेदारी को निभाना या न निभाना आप के ऊपर निर्भर करता है।

यह एक ऐसा समय है जब लाहुल के प्राकृतिक संसाधनों पर अतिरिक्त दबाब पड़ेगा। पानी, जंगल और भूमि के हितों को लेकर भी स्थानीय समुदायों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। तालमेल की कमी गम्भीर समस्या उत्पन्न कर सकती है।

विश्व के कुल भू-भाग का सिर्फ दस प्रतिशत हिस्सा पर्वतीय क्षेत्र में आता है। इन पर्वतीय क्षेत्रों में कुल आबादी का चार प्रतिशत हिस्सा रहता है। तराई में रहने वाली आबादी प्राकृतिक संसाधनों के लिए पहाड़ों पर निर्भर रहते हैं। अतः पहाड़ों में पर्यटन का विकास इस

तगछड गोम्पा, भूटान

तरीके से हो कि प्राकृतिक संसाधनों पर अतिरिक्त दबाव न पड़े। क्योंकि पहाड़ों पर पर्यटन से होने वाली प्रदूषण की समस्या पहाड़ों को ही नहीं तराई में रहने वाले लोगों के जीवन पर भी प्रभाव डालती है।

ट्रैकिंग की वजह से भी उतराखंड के धार्मिक स्थलों; यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और गोमुख जैसी जगहों पर प्लास्टिक और कूड़े का अम्बार लग चुका है। पूरे विश्व में ऐवरेस्ट ट्रैकिंग के लिए मशहूर हुआ है, लेकिन ऐवरेस्ट ट्रैक पर कूड़े की जो भरमार ट्रैकर्ज़ द्वारा लगाई गई है उसे शायद ही कभी साफ किया जा सकेगा।

कुल्लू के खीरगंगा और कांगड़ा के त्रियुंड को पर्यटन से होने वाली गतिविधियों ने बरबाद करके रख दिया। हालांकि जितने भी जगहों का ज़िक्र हुआ है ये वे जगहें हैं जहां आसानी से नहीं पहुंचा जा सकता है।

हिमालय क्षेत्र के प्रमुख पर्यटक स्थल जैसे शिमला, नैनीताल, मसूरी, डलहौज़ी, दार्जिलिंग आदि का विकास ब्रिटिश काल में ही शुरू हो चुका था। तब अंग्रेज़ों ने पहाड़ की चोटियों पर जाकर अपने लिए आरामगाह बनवाए। कुल्लू, मंडी और अन्य ज़िलों में भी वन विश्राम गृह कई जगहों पर अंग्रेज़ों द्वारा ही बनाए गए। धीरे-धीरे अंग्रेज़ों के जाने के बाद भारत के धनाढ्य वर्ग और उच्च-मध्यम व मध्यम वर्ग ने भी घूमने-फिरने के लिए इन जगहों का रुख किया। इसी के साथ-साथ ही अनेक पर्यावरण सम्बंधी समस्याओं ने भी जन्म लेना शुरू किया। शिमला में पानी की एक बूंद के लिए भी लोगों को आजकल गर्मियों में तरसना पड़ता है। मनाली में पर्यटकों से ज़्यादा टैक्सी दिखने लगी हैं।

पर्वतीय पर्यटक स्थलों की नदियों और जलाशयों का पानी बहुत तीव्र गति से दूषित हो रहा है। यही हाल अन्य पर्वतीय पर्यटन स्थलों का हो चुका है। पहाड़ों में हमने ऐसे नगरों का निर्माण किया है कि एक दूर-दराज़ का पहाड़ी वहां आकर अपने आप को हीन समझने लगता है।

पर्यटन के बदलते रुझान के साथ शहरी उद्यमियों ने पहाड़ों का रुख किया जिनका मकसद हमेशा से ही बहुत कम समय में अधिक पैसा कमाना रहता है। यह एक ऐसी सोच है जो कि पहाड़ी आदमी के अन्दर घर कर चुकी है। एक पहाड़ी आदमी के अन्दर शहर की सोच आ चुकी है यह सबसे खतरनाक है। उदाहरण के तौर पर उतराखण्ड में ऋषिकेश से लेकर व्यासी तक और भी काफी ऊपरी हिस्सों में गंगा नदी में रिवर राफ्टिंग को प्रोत्साहन देने के बहाने शहर के कई व्यवसायियों ने लोगों से सस्ते दरों पर ज़मीनें खरीद ली जहां व्यापारियों ने जंगलों को काट कर गेस्ट हाउस का निर्माण किया।

इन व्यापारियों ने पर्यावरण को ताक पर रखकर खूब कमाई की और गंगा को प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

पर्यटन से जुड़े हुए सामाजिक और आर्थिक पहलू को समझना बहुत ही ज़्यादा ज़रूरी है। जहां पैसा है वहां बहुत से लोग व्यवसाय पर एकाधिकार जमाना चाहते हैं। हर पर्यटन स्थल में ऐसा ही होता आ रहा है कि शहर के व्यापारी पर्यटन पर एकाधिकार स्थापित करते हैं। उस जगह से कोई भावात्मक रिश्ता न होने की वजह से वह उस जगह से जुड़ी हर चीज़ का अन्धाधुंध शोषण करके मोटी कमाई करते हैं और वहां रहने वाले 70 प्रतिशत लोग आज भी गरीबी रेखा से नीचे रह जाते हैं।

सरकार की तरफ से पहाड़ों में पर्यटन के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम नहीं हुआ है। सरकार के पास पर्यटन को लेकर बहुत अच्छी योजनाएं हैं जो कि कागज़ों में ही सिमट कर रह गई हैं। आज राजनैतिक तौर पर भी पहाड़ ऐसे दौर से गुज़र रहा है जहां हर पांच साल में उसके संसाधनों को लूटने की नई योजनाएं तैयार होती हैं। पहाड़ के लोगों के दीर्घकालीन हितों की हमेशा से अनदेखी हुई है। समय आ चुका है कि पर्यावरण, रीति-रिवाज़ों और संस्कृति को इज़्ज़त बक्षी जाए। पर्यटन का अधिक से अधिक लाभ स्थानीय लोगों को प्राप्त हो ताकि पर्यटन लोगों के विकास का सशक्त माध्यम बन सके।

समुदाय आधारित पर्यावरण-पर्यटन उद्यमों सहित, पर्यटन से जुड़े सभी भागीदारों का पर्यटन के क्षेत्र में शिक्षित होना आवश्यक है। लाहुल में पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ-साथ टुरिज़्म डिवेलपमेंट काउंसिल का गठन होना बहुत ज़रूरी है।

टी.डी.सी. एक ऐसा मंच प्रदान करता है जहां सरकार और स्थानीय लोग मिलकर पर्यटन की दिशा में योजना बना सकते हैं जिसकी धरातल में सफल होने के आसार ज़्यादा दिखाई देते हैं। टीडीसी अगर दीर्घकालीन मुद्दों को लेकर आगे बढ़े तो लाहुल का कुछ भला हो सकता, अन्यथा अल्पकालीन मुद्दों पर निजी स्वार्थ के आ जाने से केन्द्रीय व राज्य स्तर पर कई योजनाएं असफल हो चुकी हैं।

लाहुल की समस्त जनता को पर्यटन के क्षेत्र में पहला कदम रखने के लिए हार्दिक शुभकामनाएं। यह नए युग की शुरुआत है। संयम से काम लें।

देवभूमि हिमाचल में जंजैहली घाटी में ट्रैकिंग

आशा गुप्ता

यदि किसी घटना में परेशानी के बावजूद थोड़ा सा रोमांच भी हो तो वो घटना जीवन में एक सुखद यादगार बन जाती है। तीस अक्तूबर को विभाग द्वारा फोन पर मुझे सूचना मिली कि डी. डी.ए. अधिकारियों के ट्रैकिंग में जाने वाले ग्रुप में मेरे नाम का भी चयन हुआ है और इकत्तीस अक्तूबर को ही हिमाचल प्रदेश के मंडी ज़िले के जंजैहली नामक स्थान के लिए प्रस्थान करना है। यह एक उत्साहजनक समाचार था लेकिन तैयारी के लिए समय? एक सप्ताह के सफ़र की तैयारी के लिए केवल अट्ठाइस घंटे का समय दिया गया था और वो भी ट्रैकिंग जैसे टफ़ कार्यक्रम के लिए। इतना कम समय पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, लेकिन ट्रैकिंग में जाने के लिए मैंने फ़ौरन अपनी स्वीकृति दे दी और यात्रा की तैयारी शुरू कर दी। ट्रैकिंग का आकर्षण ही ऐसा होता है कि जिसने भी एक बार ट्रैकिंग का लुत्फ़ उठा लिया हो वह बार-बार ट्रैकिंग पर जाना चाहेगा। ठीक एक साल पहले उत्तराखण्ड में भी ट्रैकिंग पर जाने का अवसर मिला था। संयोग से ट्रैकिंग व यात्रा के लिए ज़रूरी सामग्री घर पर ही मिल गई और सामान जुटाने के लिए ज़्यादा भागदौड़ नहीं करनी पड़ी लेकिन फिर भी कुछ अत्यंत आवश्यक चीज़ें रह ही गईं। इसके बावजूद देवभूमि हिमाचल प्रदेश के अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य के बीच ट्रैकिंग का ये अनुभव हमेशा याद रहेगा।

जंजैहली हिमाचल प्रदेश के मंडी ज़िले की थुनाग तहसील में पड़ता है जो मंडी से लगभग सत्तर किलोमीटर व तहसील मुख्यालय थुनाग से तेरह किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। आधुनिक युग की चहल-पहल व भाग-दौड़ से रहित जंजैहली घाटी प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर है। हम इकत्तीस अक्तूबर को शाम सात बजे दिल्ली के कश्मीरी गेट स्थित अंतर्राज्यीय बस अड्डे पर पहुँच गए जहाँ से हमें मंडी के लिए बस लेनी थी। हम चालीस यात्री थे और हिमाचल राज्य परिवहन निगम की दो वोल्वो बसों में हमारी बुकिंग थी। कार्यक्रमानुसार हमें आठ बजे तक दिल्ली से प्रस्थान करना था लेकिन कुछ बसें रद्द हो जाने की वजह से हम नौ बजे तक ही प्रस्थान कर पाए। पूरी रात के सफ़र के बाद अगले दिन अर्थात् एक नवंबर को प्रातः सात बजे तक हम सब मंडी पहुँच गए। वहाँ से हम सब एक होटल में गए और ये पूरा दिन मंडी स्थित होटल में ही बिताया जहाँ से अगले दिन अर्थात् दो नवंबर को हमें जंजैहली के लिए प्रस्थान करना था।

मंडी स्थित होटल में सबने फ्रैश होकर नाश्ता वगैरा किया और विश्राम भी। दोपहर तक सभी लोग चुस्त-दुरुस्त नज़र आ रहे थे। दोपहर के भोजन के उपरांत रिवालसर झील जाने का कार्यक्रम था। मंडी ज़िले में कई ख़ूबसूरत झीलें हैं जिनमें से रिवालसर भी एक है। रिवालसर झील मंडी से 24 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। बस द्वारा लगभग एक घंटे के सफ़र के बाद हम रिवालसर झील के किनारे खड़े थे। झील चारों तरफ़ से घने वृक्षों से आच्छादित ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरी है। झील के शांत जल में इनका प्रतिबिंब बहुत ही आकर्षक लगता है। झील के चारों ओर परिक्रमा पथ बना है व इस पर एक गुरुद्वारा, मंदिर व कई बौद्ध मॉनेस्ट्रीज़ स्थित हैं। यह अत्यंत सुरम्य स्थल है अतः प्राचीन काल से ही अनेक साधु-संतों व तपस्वियों की तपोस्थली रहा है। इस स्थान को महर्षि लोमश की तपोभूमि भी माना जाता है।

यहाँ रिवाल्सर के किनारे पर जो भव्य गुरुद्वारा है वह गुरु गोविंद सिंह जी की याद में बनवाया गया है क्योंकि गुरु गोविंद सिंह जी तीस दिन तक यहाँ रुके थे। मंडी के राजा जोगिंदर सिंह ने सन् 1930 में इस गुरुद्वारे का निर्माण करवाया था। हर साल बैसाखी के अवसर पर श्रद्धालु यहाँ स्नान करने के लिए आते हैं। यहाँ के सुरम्य परिवेश में लगभग एक घंटा व्यतीत करने के उपरांत शाम की चाय के समय तक हम सब मंडी स्थित अपने होटल में लौट आए। चाय के दौरान कुछ सदस्यों ने गीत-ग़ज़लों व शेरो-शायरी के द्वारा माहौल को ख़ुशनुमा बना दिया। रात के भोजन के बाद सभी सदस्य अपने-अपने कमरों में सोने के लिए चले गए क्योंकि अगले दिन प्रातः काल जंजैहली के लिए प्रस्थान करना था।

अगले दिन अर्थात् दो नवंबर को प्रातःकाल ब्रेकफास्ट के उपरांत मंडी से जंजैहली के लिए प्रस्थान किया। लगभग साढ़े तीन-चार घंटे की यात्रा के पश्चात हम जंजैहली में थे। वास्तव में ट्रैकिंग के लिए जंजैहली बेस कैंप है क्योंकि यहीं से ट्रैकिंग का प्रारंभ होता है। दो नवंबर को हम जंजैहली में ही रुके। वहीं पहुँचकर सबने लंच लिया और दोपहर के बाद वहीं थोड़ी सी ट्रैकिंग भी की। ट्रैकिंग करते हुए हम जहाँ पहुँचे वहाँ दो-तीन परिवार रहते थे। उन्होंने हम सभी को सेब खाने के लिए दिए। आजकल यहाँ सेब काफी मात्रा में उगाया जाने लगा है। मुख्य रूप से गोल्डन एप्पल उगाया जाता है। यहाँ का स्थानीय राजमा भी बहुत प्रसिद्ध है।

पता चला कि यहाँ लोग अब पारंपरिक चीज़ों की खेती करने में रुचि नहीं लेते हैं क्योंकि खेती में बहुत मेहनत करनी पड़ती हैं और

खेती लाभदायक भी नहीं रही। अतः लोग मटर, आलू और दूसरी फसलें उगाने की बजाय अपने खेतों में अधिक से अधिक सेब के पेड़ लगाने पर ज़ोर दे रहे हैं। इसमें कम मेहनत करनी पड़ती है और आय भी नियमित सी ही हो जाती है। एक बार पेड़ लगाने पर कुछ साल के बाद लगातार कई सालों तक फल मिलते रहते हैं। अन्य पर्वतीय स्थलों की तरह यहाँ के लोग भी काफी परिश्रमी व सीधे-साधे हैं। सूरज छिपने पर अंधेरा होने के बाद दस-पंद्रह मिनट में ही सब सुनसान नज़र आने लगता है।

अगले दिन अर्थात् तीन नवंबर को सुबह जल्दी उठकर तैयार हो गए और अपना सारा सामान पैक करके वहीं जंजैहली के होटल में रख दिया क्योंकि ट्रैकिंग के बाद तीसरे दिन वापसी होनी थी। नाश्ता वग़ैरा करने के फ़ौरन बाद ट्रैकिंग के लिए अपेक्षित सामान लेकर ट्रैकिंग प्रारंभ कर दी। पहले दिन का हमारा गंतव्य बूढ़ा केदार नामक स्थान था। जैसा कि नाम से ही पता चलता है इसका संबंध भगवान शिव व भीम दोनों से है। यहाँ के लोग इस स्थान को बड़ा पवित्र मानते हैं। यहाँ एक छोटा सा मंदिर भी बना हुआ है। ऊपर से बहते हुए आ रहे नाले को रोककर एक कुंड सा भी बना दिया गया है। यही नाला नीचे जंजैहली होकर आगे चला जाता है और इसमें कुछ और छोटे नाले भी मिल जाते हैं।

बूढ़ा केदार में कोई आबादी नहीं है बस एक पड़ाव मात्र है। चढ़ाई के बीचों-बीच तीनों तरफ़ से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों व घने पेड़ों से घिरा हुआ एक बहुत ही छोटा सा समतल स्थान है जहाँ पंद्रह-सोलह टैंट लगाए जा सकते हैं। प्रायः ट्रैकिंग ग्रुप्स ही यहाँ अपने टैंट लगाते हैं। हम सभी ट्रैकर्स दोपहर होते-होते बूढ़ा केदार पहुँच गए। जंजैहली से बूढ़ा केदार तक की तीन-चार घंटे की ट्रैकिंग काफी मज़ेदार रही पर साथ ही थकान भी कम नहीं हुई थी क्योंकि कई स्थानों पर खड़ी चढ़ाई थी। रास्ते में कहीं कोई आबादी नहीं थी अतः रास्ते में खाने-पीने के लिए कुछ भी मिलना संभव नहीं था। वैसे इस ट्रैकिंग के लिए हम सबके पास खाने-पीने का पर्याप्त सामान था। दोपहर होते-होते हम बूढ़ा केदार पहुँच गए।

वहाँ टैंट लगे हुए थे। धूप खिली हुई थी जो बहुत सुहावनी लग रही थी। चाय पीने के बाद सभी लोग धूप में पसर गए और धूप का आनंद लेने लगे। उसके बाद लंच लिया। क्योंकि ये स्थान तीन तरफ़ से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों व घने पेड़ों से घिरा हुआ था अतः बहुत जल्दी ही देखते-देखते धूप ग़ायब हो गई और ठंड बढ़ने लगी। दोपहर के बाद पास की एक खड़ी चट्टान से रस्सियों के सहारे नीचे उतरने का अभ्यास करवाया गया जिसमें अधिकांश लोगों ने भाग लिया। आज रात तीन नवंबर की रात को यहीं टैंटों में रुकना था। हल्की बूँदाबाँदी भी शुरू हो गई थी जो जल्दी ही रुक गई। रात जल्दी ही खाना-पीना हो गया और उसके बाद बोनफ़ायर। सभी अलाव के चारों तरफ़ बैठ गए और सभी ने अपने-अपने हुनर का प्रदर्शन करते हुए लोगों का भरपूर मनोरंजन किया।

नवम्बर के पहले सप्ताह में ही रात को इस स्थान का तापमान शून्य से नीचे पहुँच जाता है अतः रात में सोने के लिए स्लीपिंग बैग्स की व्यवस्था थी। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों व घने पेड़ों से घिरे जंगल में नाले के किनारे लगे टैंट में स्लीपिंग बैग में सोने का अनुभव अत्यंत रोमांचक था। नाला भी उसी स्थान पर पास ही काफी ऊँचाई से गिर रहा था। दिन में तो पता नहीं चला पर रात को पानी के गिरने की बड़ी तेज़ आवाज़ आ रही थी। वैसे डर भी लग रहा था कि कहीं कोई जंगली जानवर न आ जाए पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। वैसे उस क्षेत्र में बाघ अथवा तेंदुए भी मिलते हैं।

अगले दिन चार नवंबर को सुबह उठने के बाद अगले सफ़र की तैयारी शुरू कर दी। आज यहाँ बूढ़ा केदार से चलकर शिकारी देवी नामक स्थान तक पहुँचना था और आज ही वहाँ से वापस बूढ़ा केदार भी आना था। सुबह जल्दी ही नाश्ता करने के बाद सभी अगले गंतव्य के लिए रवाना हो गए। यह ट्रैकिंग भी काफ़ी कठिन व रोमांचक रही। कई जगहों पर चढ़ाई काफ़ी खड़ी व मुश्किल थी। किसी तरह शिकारी देवी पहुँचे लेकिन वहाँ पहुँचकर सारी थकान भूल गए। वहाँ शिकारी देवी माता का मंदिर है जिसकी पूरे क्षेत्र में दूर दूर तक बड़ी मान्यता है। यह स्थान आसपास के सभी स्थानों से काफ़ी ऊँचा है अतः यहाँ से चारों तरफ़ के दृश्य दिखलाई पड़ते हैं जो अत्यंत आकर्षक लगते हैं। अधिक ऊँचाई पर होने के कारण यहाँ हवा भी काफ़ी तेज़ी से चल रही थी।

दोपहर ढल चुकी थी अतः ठंड भी बढ़ने लगी थी। वहाँ रुकने की व्यवस्था भी हो सकती थी लेकिन वहाँ चाय पीकर हमारा वापस आने का कार्यक्रम था। वैसे शिकारी देवी तक दूसरे रास्ते से गाड़ियाँ भी जाती हैं लेकिन हम जिस रास्ते से आए थे और जिस रास्ते से वापस जाना था वहाँ केवल ट्रैकिंग ही संभव है। कुछ लोग जो वापसी में ट्रैकिंग नहीं करना चाहते थे गाड़ी लेकर दूसरे रास्ते से सीधे जंजैहली पहुँच गए। चाय पीने के बाद हम पुनः ट्रैकिंग करते हुए बूढ़ा केदार के लिए चल पड़े। आज का सफ़र कल के मुक़ाबले में डबल हो गया था। वापसी में उतराई ज़रूर थी लेकिन बीच-बीच में दुर्गम ऊँचाइयाँ भी कम नहीं थीं। उन्हें पार करते हुए जब हम बूढ़ा केदार पहुँचे तब तक सूरज ढल चुका था।

पुनः बूढ़ा केदार पहुँचकर चाय ली और बाद में रात का खाना लिया। सभी थके हुए थे लेकिन खाने के बाद पुनः सभी अलाव के पास बैठ गए और देर तक गपशप व गानों का दौर चलता रहा। लेकिन यहाँ देर तक भी बहुत देर नहीं होती। नौ बजाने ही मुश्किल हो जाते हैं। उसके बाद मौसम ख़राब हो गया। हल्की-हल्की बारिश भी पड़ने लगी। वैसे तो कुछ काम नहीं करना था लेकिन टैंट से

बाहर निकलने में बड़ी परेशानी हो रही थी। बारिश तो हल्की-हल्की थी लेकिन उसी से नाले में पानी की कुछ मात्रा ज़रूर बढ़ गई थी और पानी गिरने का शोर भी पिछले दिन के मुक़ाबले में कुछ ज़्यादा था। बस एक रात की ही तो और बात थी। कल सुबह जंजैह्ली लौट जाना था और फिर घर।

अगले दिन अर्थात् पाँच नवंबर को सुबह उठते ही चाय पीने के बाद जंजैह्ली लौटने की तैयारी शुरू कर दी। बूढ़ा केदार से जंजैह्ली तक वापसी की ट्रैकिंग अपेक्षाकृत आसान लगी। दो-ढाई घंटे में आ पहुँचे। आसान इसलिए भी लग रही होगी कि यात्रा का कठिन पड़ाव पूरा हो रहा था। जंजैह्ली पहुँचकर पूरे दिन आराम किया। अगले दिन अर्थात् छह नवंबर को वापसी थी। छह नवंबर को सुबह चाय पीने के बाद जंजैह्ली से लगभग तीन किलोमीटर पहले स्थित पाण्डव शिला नामक स्थान पर सड़क के रास्ते से पैदल गए और वापस आए। यह सफ़र तो बहुत मज़ेदार रहा। यहाँ सड़क के पास ही छह साढ़े छह फुट ऊँचाई का एक अण्डाकार पत्थर रखा है। कहते हैं इसे पाण्डवों ने स्थापित किया था इसीलिए इसे पाण्डव शिला के नाम से ही जाना जाता है।

पाण्डव शिला की एक विशेषता यह है कि इसे सिर्फ़ एक उँगली से हिलाया जा सकता है लेकिन दोनों हाथों से पूरे शरीर का ज़ोर लगाने पर यह बिल्कुल नहीं हिलती। इसके अतिरिक्त इस शिलाखण्ड की एक और विशेषता भी है। एक ख़ास दूरी से लोग इस शिलाखण्ड के ऊपरी भाग पर छोटे-छोटे कंकर फैंकते हैं। कंकर फैंकने से पहले मन में कोई बात सोचते हैं अथवा संकल्प लेते हैं। फैंकने पर कंकर यदि शिलाखण्ड पर रुक जाता है तो कहते हैं कि मन में सोची हुई बात अवश्य पूरी होगी। शिलाखण्ड में उपरोक्त विशेषताओं को किसने खोजा होगा और कैसे खोजा होगा ये तो पता नहीं लेकिन इन विशेषताओं से कई महत्त्वपूर्ण व उपयोगी संदेश ज़रूर मिलते हैं।

जब हमारा लक्ष्य अर्जुन की तरह पूर्ण रूप से स्पष्ट और निश्चित होता है तभी हमें अपना निशाना लगाने में आसानी होती है और हम सही लक्ष्य पर संधान कर पाते हैं। जीवन में सहजता, सरलता, संतुलन, सतर्कता और निश्चित लक्ष्य अथवा उद्देश्य की स्पष्टता व एकाग्रता यही सफलता के मूल आधार हैं। पाण्डव शिला जाना भी अत्यंत सार्थक रहा। पाण्डव शिला से लौटने के बाद लंच लिया। बस तैयार खड़ी थी। जंजैह्ली से बस में बैठकर पुनः मंडी के लिए रवाना हो गए। वहाँ सीधे बस अड्डे पर पहुँच कर दिल्ली के लिए रात वाली बस ली और पूरी रात सफ़र करने के बाद अगले दिन अर्थात् सात नवंबर को प्रातःकाल दिल्ली जा पहुँचे। काफी समय बीत जाने के बाद भी आज तक उस यादगार ट्रैकिंग की यादें ताज़ा बनी हुई हैं।

ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा,
दिल्ली-110034

BHAGWAN SINGH & CO.

Manali, Distt. Kullu, HP Ph: 9816042798

A company which is always ready to serve the farmers of Lahul valley and the cultivators of the country with quality and variety seeds of potato and also ensures the growers and users of seeds with better long term returns

कुल्लू में बौद्ध धर्म की स्थिति

मौलू राम ठाकुर

जहां तक लिखित इतिहास का सम्बन्ध है कुल्लू में बौद्ध-धर्म का सबसे पहला परिचय चीनी यात्री हिउएन चियांग यात्रा संस्मरण में मिलता है। उसका कहना है कि क्यू-लू-तो जलन्धर से 700 ली अर्थात् 117 मील उत्तर-पूर्व में स्थित है जो सर ए. कुनिंघम के अनुसार वर्तमान कुल्लू की सही स्थिति है। हिउएन चियांग के अनुसार तब यहां लगभग बीस संघाराम (बौद्ध विहार) थे जिनमें एक हज़ार के आस-पास लामा रहते थे जो प्रायः महायान के अनुयायी थे, कुछ अन्य निकायों का अध्ययन करते थे। यहां पन्द्रह देव-मंदिर भी थे जहां विभिन्न समुदाय के लोग बिना भेद-भाव के रहते थे। इसके अतिरिक्त पर्वत की गुफाओं और कन्दराओं में, जो एक-दूसरे के आमने-सामने थी, अर्हत रहते थे या ऋषि ठहरते थे। उसका यह भी कहना है कि पुराने समय में धर्म प्रचार और मानव सुरक्षा के लिए तथागत अपने शिष्यों के साथ इस प्रदेश में आए थे तथा इसकी याद में महाराजा अशोक ने इस प्रदेश के मध्य में एक स्तूप का निर्माण किया था।

बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व 557 तथा निर्वाण ई.पू. 447 माना जाता है। अशोक का शासन समय ई.पू. 268 से 232 रहा है तथा हिउएन चियांग 629-645 ईस्वी सन् के बीच भारत आया था। इस का अर्थ यह हुआ कि भगवान बुद्ध के इस ओर भ्रमण तथा बाद में अशोक द्वारा स्तूप स्थापित करने और हिउएन चियांग की यात्रा तक आठ-दस सौ-वर्षों तक बौद्ध धर्म कुल्लू में मानव धर्म की सेवा करता रहा और चीनी यात्री के समय भी पूरे यौवन पर था और बीस बौद्ध-विहारों में लगभग एक हज़ार लामा अध्ययनरत थे। भिक्षु संघ-रक्षित ने भी अपनी पुस्तक 'ए सर्वे ऑफ बुद्धिज़्म' में उक्त तथ्यों की पुष्टि की है और यह आवश्यकता जतलाई है कि उस स्थान की खोज की जानी चाहिए जहां अशोक ने स्तूप स्थापित किया था क्योंकि ऐसे स्तूप का कुल्लू भर में कहीं नाम निशान नहीं है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पूर्व निदेशक डॉ. हीरानंद शास्त्री ने इस दिशा में प्रयत्न किए थे, परन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली थी। स्व. लालचन्द प्रार्थी ने अपनी पुस्तक 'कुलूत देश की कहानी' में लिखा है कि ''वह जगह शायद व्यास और पार्वती नदियों के संगम पर हो जिसे आज 'जिया' कहते है'' परन्तु वहां ऐसे स्तूप होने के कोई संकेत नहीं है। खण्डहर तो होने ही चाहिए। हां, ऐसा भी सम्भव है कि स्तूप नदियों के किनारे पर था जो बाद में बाढ़ द्वारा तहस-नहस हो गया हो। बिजली महादेव का स्तम्भ भी आदिकाल बौध-स्तूप हो सकता है।

चीनी यात्री के विवरण से यह संकेत तो स्पष्ट है कि तब तक पन्द्रह अन्य देव-मंदिर भी थे जहां अनेक सम्प्रदाय के लोग बिना भेदभाव के पूजा करते थे, परन्तु ग्राम देवताओं का इतना प्रभाव बढ़े कि इस क्षेत्र से बुद्ध-धर्म बिल्कुल समाप्त हो जाए यह आश्चर्य का विषय है। वस्तुतः बुद्ध-धर्म के निष्कासन में जगतगुरु शंकराचार्य के अभियान की विशेष भूमिका रही है और विश्वास है कि उनके अनुयायी कुल्लू क्षेत्र में आए थे और उन्होंने बौद्ध-धर्म के अनुष्ठान-स्मारकों को नष्ट करके वहां शिव मंदिर स्थापित किए थे। ऐसे शिव मंदिरों में नगर, दशाल, छाकी, जगतसुख के मंदिर हो सकते हैं। स्व. लाल चन्द प्रार्थी का कहना है कि नगर गांव के जिस भाग का नाम जोक है यह शब्द असल में 'जोलांग' है और ऐसा मालूम होता है कि कुल्लू में बुद्ध-धर्म तिब्बत की ओर से आया है।'' स्व. प्रार्थी के इन विचारों को हिउएन चियांग के समय या उससे पहले के कुलूत प्रदेश के बौद्ध-धर्म के साथ जोड़ा नहीं जा सकता। तब यहां तथागत के आगमन तथा अशोक के प्रयत्नों से यहां बौद्ध-धर्म सीधा पहुंचा था। इस पर तिब्बत की ओर से आए बौद्ध धर्म का कोई प्रभाव होने का प्रश्न नहीं उठता। स्पीति की ओर से यहां फैले बौद्ध-धर्म के प्रभाव की ऐतिहासिक कड़ी भिन्न है।

कुल्लू के इतिहास से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ निरमण्ड के परशुराम मंदिर को दिया गया ताम्र-प्राधिकार पत्र है जिसे डॉ. फ्लीट, डॉ. हीरानन्द शास्त्री आदि विद्वानों ने पुरालिपि के आधार पर सातवीं सदी ईस्वी का माना है। इसे राजा समुद्रसेन ने प्रदान किया है जो अपने आप को महासामन्त बताता है अर्थात् किसी बड़े राजा का जागीरदार। कुल्लू, मण्डी, कांगड़ा आदि पड़ोस की रियासतों में सातवीं शताब्दी में इस नाम का कोई राजा नहीं हुआ है तथा विद्वानों का मानना है कि यह कोई स्पीति या तिब्बत का राजा हो सकता है। 'हिस्टरी ऑफ द पंजाब हिल स्टेट्स' के लेखक हचिसन और बोगल के अनुसार ''कहा जाता है कि ईस्वी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में 'सेन' उपाधि वाला एक बुद्ध-धर्म पूर्व हिन्दू राजवंश स्पीति में राज्य करता था और कैप्टन हरकोर्ट का कहना है कि 'सेन' उपाधि के सिक्के इस वादी में मिले हैं। अतः निरमण्ड के ताम्रपत्र का दाता स्पीति का कोई राजा रहा होगा।''

विद्वानों का उक्त मत सही है क्योंकि कुल्लू का इतिहास बताता है कि कुल्लू के राजा रुद्रपाल (सन् 600-650 के आस-पास) के समय में स्पीति के राजा राजेन्द्र-सेन ने कुल्लू पर आक्रमण किया था। युद्ध में रुद्रपाल परास्त हुआ था और स्पीति के राजा को नज़राना देना स्वीकार किया था। रुद्रपाल के बाद उसका बेटा हमीरपाल भी निर्धारित नज़राना देता रहा, परन्तु उसके मरने पर उसके पुत्र

प्रसिद्ध-पाल ने नज़राना देना बंद किया और उस समय के स्पीति के राजा चेत-सेन पर आक्रमण किया और कुल्लू के अतिरिक्त लाहुल क्षेत्र को भी स्पीति प्रशासन से मुक्त कराया। हिस्टरी ऑफ द पंजाब हिल स्टेट्स के पृष्ठ 434 पर लिखा है कि कुल्लू द्वारा चेत सेन के परास्त किए जाने के तुरन्त बाद स्पीति पर लद्दाख या रुपशु के गे-मुर-ओर ने आक्रमण किया तथा चेतसेन को हरा कर उसे मौत के घाट उतारा। सम्भवतः इसके साथ ही स्पीति में बुद्ध-धर्म से पूर्व हिन्दु वंश के राज्य का समापन हो गया और देश तिब्बती प्रशासन में चला गया। यह समय 600-650 का है।

वास्तव में उस प्राचीन समय में स्पीति गुगे साम्राज्य का एक भाग था और गुगे हिन्दू राज्य था; परन्तु हिन्दू शब्द और हिन्दुत्व की भावना बहुत देर बाद की उपज है। आदि काल में हिमालय का पश्चिमी क्षेत्र एक ही जाति के दो सम्प्रदायों आर्यों तथा दास-दस्युओं की कर्म-भूमि थी। दास-दस्यु आन्तरिक हिमालय में अधिकार जमाए हुए थे। यहीं आर्यों का नेता इन्द्र शम्बर के साथ 'चत्वारिश्यां शरद्यन्वविन्दत्' चालीस वर्षों तक लड़ता रहा। आन्तरिक हिमालय के इस सारे क्षेत्र में आज भी शम्बर को देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। देवता के रूप में शम्बर की साम्यता और मान्यता ब्दे-मूछोग के नाम से भैरव, चण्डरोषण, हेरुक और हयग्रीव आदि प्रचण्ड एवं उग्र देवताओं के साथ होती है। ये सब वज्र सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं और प्रायः अक्षोभ्य के प्रचण्ड रूप में प्रदर्शित होते हैं। शम्बर का इस तरह का रौद्र रूप उसकी वैदिक-कालीन प्रवल शक्ति का घोतक है। आर्यों के साथ लड़ता हुआ वह ऐसा उग्र रूप धारण करता रहा है। इसलिए आज भी वह इस श्रेणी के अन्य देवताओं के साथ पूजित होता है। परंतु जहां तक नाम का सम्बन्ध है वह प्रचण्ड नहीं है शम्बर है अर्थात् शान्त स्वभाव का है। इसीलिए उसे ब्दे-मूछोग अर्थात् 'परमानन्द' कहते हैं। इस स्थिति में उसकी मान्यता 'यी-दम' अर्थात् रक्षाकारी देवताओं में आंकी जाती है।

अपने यौवनावस्था में गुगा एक बहुत विशाल साम्राज्य था। ए.एच. फ्रेंके का मानना है कि ''पश्चिमी हिमालय में गुगे एक बहुत बड़ा राज्य था जिसकी तीन राजधानियां थीं-प्रथम ठोलिंग, द्वितीय च़परंग और तृतीय गरथोग ये तीनों स्थान अन्तरर्राष्ट्रीय भारतीय सीमा के दूसरी ओर पड़ते है, परन्तु शिपकी पास से बहुत दूर नहीं हैं।

गूगे राज्य कब बौद्ध-धर्म के अन्तर्गत आया, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी तक यहां के राजा हिन्दु धर्म से थे क्योंकि 'सेन' नाम के राजाओं ने निरमण्ड के मंदिर को ताम्र-दान-पत्र दिया और इसी नाम से कुल्लू पर आक्रमण किया या कुल्लू के राजाओं के साथ लड़ते रहे हैं। यों लगता है कि सातवीं शताब्दी के दौरान या तुरन्त बाद ही तिब्बत के महान राजा स्रोङ-ब्च़न-गम्पो 600-650 के बौद्ध-धर्म के पुनरुत्थान 'सुङर दर' अर्थात् प्रथम चरण के समय ही इस क्षेत्र में बौद्ध-धर्म फैल चुका था और वह राज-धर्म भी बन चुका होगा, परन्तु राजाओं के नाम 'सेन-युक्त' ही रहे। परंतु यह भी एक अस्थायी परिवर्तन था क्योंकि नौंवी शताब्दी में लङ्दर्मा ने सारे तिब्बत से बौद्ध-धर्म का सफाया कर दिया।

लङ्दर्मा का 842 ई. में एक बौद्ध लामा द्वारा वध किया गया। उसके ओद स्रुङे और युम-व्र्तन दो पुत्र थे। इनमें ओद स्रुङ का पलखोर्च़न (द्पल-अखोर-ब्च़न) पुत्र हुआ और उसके चद-दे-ञिमा गोन तथा टशि चेगपल दो लड़के हुए। बड़ा लड़का ञिमागोन राजा बना और बूढ़ा होने पर उसने अपना राज्य अपने तीन बेटों में बांट दिया। सबसे बड़े पुत्र पलदे रिगपागोन को मङ-युल, दूसरे पुत्र टशि-देगोन को 'पुरङ' (स्पु-रङ्स) तथा सबसे छोटे पुत्र देच़ुनगोन को ज़ङ-ज़ुङ और गुगे के तीन प्रान्त दिए। मङ-युल वर्तमान लद्दाख है। पुरंग मूल रूप में मानसरोवर और कैलाश पर्वत के मध्य का क्षेत्र है। मूलतः यह सतलुज नदी के स्रोत के आस-पास का क्षेत्र है। पुरङ से नीचे सतलुज नदी के आरम्भिक दोनों किनारों पर ज़ङ-ज़ुङ का क्षेत्र पड़ता है। ख्युङ-लुङ इसका प्रमुख मूल स्थान रहा है।

इस तरह उस समय पूर्व में कैलाश पर्वत से लेकर पश्चिम में लद्दाख तक एक विशाल क्षेत्र में गुगे राज्य फैला था। पूर्वोक्त विभाजन में सबसे छोटे पुत्र देच़ुनगोन को ज़ङ-ज़ुङ के साथ गुगा के 'मूङ-ओग्-सुम' अर्थात् तीन प्रान्त दिए गए थे। इन तीन प्रान्तों का कहीं विवरण नहीं है, परन्तु यों लगता है कि पहला प्रान्त ज़ङ-ज़ुङ की सीमा से लेकर ठोलिङ चपरङ और गरथोग तक का क्षेत्र रहा होगा। दूसरे प्रान्त में लाहुल का ऊपरी भाग और ज़ंस्कर का क्षेत्र शामिल था। तीसरे प्रान्त में स्पीति का पूरा क्षेत्र तथा वर्तमान किन्नौर का ऊपरी भाग शामिल रहा होगा।

गुगे राज्य की पूर्वोक्त स्थिति दसवीं शताब्दी की है। इसी स्थिति में उसने तिब्बत से नष्ट-भ्रष्ट हुए बौद्ध-धर्म को पुनर्जागृत किया। इतिहासकार गुगे राज्य के उस समय में बौद्ध-धर्म के पुनरुत्थान को 'फ्यी दर' अर्थात् द्वितीय प्रचारण के नाम से पुकारते हैं। लङदर्मा के मारे जाने पर जब मूल तिब्बत में अशान्ति, अव्यवस्था और अस्थिरता फैली थी तब दूर-दराज़ गुगे राज्य ने बौद्ध-धर्म का पुनरुत्थान करके तिब्बत में पुनः शान्ति तथा राज्य स्थापित कराया। देच़ुनगोन (ल्दे-ब्च़ुन-म्गोन) के बाद तेरह पीढ़ियों-पुश्तों तक राजाओं के नामों के साथ 'दे (या ल्दे)' उप-नाम चलता रहा। तब राजवंश में पुनः हिन्दु भावना जागने लगी। अशोक-ल्दे के दो पुत्रों ने अपने नामों के साथ 'ल्दे' की जगह 'मल' (लिखित स्मल या र्मल) उपाधि जोड़ी-हजीन्द्र मल तथा अनन्तमल। मल उपाधि दस पीढ़ियों तक चली। अन्तिम राजा प्रतिमल के समय तक ल्हासा की स्थिति न केवल सुधरी थी, वरन् राज-प्रशासन स्थिर और सुदृढ़

बन चुका था तथा 1640 के आस-पास ल्हासा सरकार ने गुगे राज्य पर आक्रमण किया और उसे आसानी से अपने अधीन कर लिया। परन्तु 1646-47 के बस्गो के युद्ध में मुगल सेना द्वारा समर्थित लद्दाख और बुशहर की सेना ने तिब्बत और मंगोल की सेना को पराजित किया और ल्हासा सरकार ने थोड़े ही वर्षों पूर्व गुगा राज्य के अधिकृत क्षेत्र में से किन्नौर में वंगतु पुल तक का क्षेत्र सन्धि के अनुसार बुशहर राज्य को दिया।

ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक का समय न केवल गुगे राज्य का अपितु समस्त तिब्बत का एक उज्ज्वल समय रहा है। यह वही समय है जब बौद्ध-धर्म कुल्लू से एक बार पूर्णतया विस्थापित हो जाने के बाद पुनः स्थापित हुआ और यदि पिति ठाकुरों का क्रूर तथा अत्याचारी बर्ताव और व्यवहार न होता तो कुल्लू में इस समय का स्थापित बौद्ध-धर्म अधिक गहरा, दूरगामी तथा स्थायी प्रभाव छोड़ता।

सातवीं शताब्दी से महान राजा स्रोङ-ब्चन-गम्पो के लोकप्रिय, शान्त और बौद्ध-धर्म सम्पन्न प्रशासन के फलस्वरूप और बाद में लङदर्मा के अत्याचारी व्यवहार और समस्त राज्य में अशान्त वातावरण के कारण स्पीति की ओर से कुल्लू को किसी तरह का खतरा पेश नहीं आया; परन्तु गुगा राज्य के पुनरुत्थान पर तिब्बत और स्पीति के स्थानीय शासकों ने पर्वतों को पार करके कुल्लू में घुसपैठ शुरू की तथा मार्ग में मुख्य घाटी तक बस्तियां स्थापित की और प्रत्येक बस्ती में एक अधिकारी नियुक्त किया जिसे स्थानीय लोग 'पिति-ठाकुर' कहते थे। इनमें से एक कुख्यात ठाकुर जगतसुख के ऊपर एक पहाड़ के टीले पर रहता था जो मानव मांस खाता और दूध पीता था। छाकी नाला और हमटा तथा चन्द्रखणी के मार्गों पर ऐसे अनेकों बदनाम पिति-ठाकुरों का कब्ज़ा था।

पिति ठाकुरों का यह आतंक लगभग सन् 1500 तक जारी रहा। तब तक राजा सिद्ध सिंह का शासन बड़ा सुदृढ़ हो गया था। उसने सारा क्षेत्र इन ठाकुरों से मुक्त कराया और फिर कभी इनका नाम इस ओर इतिहास में नहीं मिलता। वे अपने पीछे एक विरासत छोड़ गए जो आज भी उनकी याद ताज़ा करती है। यह परीणी में जमलु देवता का मंदिर है। जब तक पतियालों का इस क्षेत्र में प्रभाव रहा पिति ठाकुर और अन्य लोग इसकी पूजा करते थे। आज भी जब कभी स्पीति के लोग इधर आते हैं वे जमलू के दर्शन किए बिना नहीं जाते और वे बिना जूते उतारे मंदिर में जाते हैं हालांकि अन्य सम्प्रदाय के लोग बिना जूते उतारे मंदिर में नहीं जाते हैं। देवता स्वयं कहता है कि मैं भोटंत, चीन, पांगू, पदल और मानसरोवर देश से आया हूं और जब कभी उसका चेला मूर्छा में आता है तो ऐसी भाषा बोलता है जो अन्य लोग नहीं जानते। लोगों का मानना है कि यह भोटी भाषा में बोलता है।

डॉ. स्नलग्रूव परीणी के जमलू को 'सब्दग' अर्थात् भूदेवता मानता है और इस लिए इसे शिखर देवता की श्रेणी में भी स्थान देता है, तथा यह इसकी प्रकृति के अनुसार ठीक भी है; क्योंकि यह स्पीति के ठाकुर अपने साथ लाए थे और यहां भू-देवता के रूप में स्थापित कर गए थे। स्नलग्रूव इस श्रेणी के तीन और देवता मानता है- लाहुल का घेपङ, स्पीति का जम-ला और किन्नौर का पुर्ग्यल। उसका यह भी कहना है कि असल भू-देवता की कोई मूर्ति नहीं होती, न उसे मूर्ति रूप में दिखाया जाता है। उसका एकमात्र निशान सीधी छड़ी होती है जिसके सिरे पर त्रिशूल और कपड़े के गुच्छे लटकाए होते हैं। गांव में इनके मंदिर बनाए जा सकते हैं, परन्तु छड़ी या त्रिशूल को छोड़ कर कोई और मूर्ति स्थापित नहीं की जाती। डॉ. टुची का भी यही मत है, परन्तु उसका कहना है कि किन्नौर के नाको गांव में पुर्ग्यल को चित्रों द्वारा दिखाया गया है।

परीणी के जमलू का पहले केवल मंदिर था। उसमें किसी तरह की मूर्ति नहीं थी। अब लोगों ने इस देवता का रथ या पालकी बनाई है और उसकी वैसे ही मान्यता और पूजा होती है जैसे कुल्लू भर में अन्य ग्राम देवताओं की मान्यता है।

मि.जी.सी.एल. हौवल एसिस्टेंट कमिश्नर कुल्लू (1907-1910) ने "जर्नल ऑफ द पंजाब हिस्टोरिकल सोसाइटी, खण्ड छह, सं. 2, ए. 71" में एक घटना का उल्लेख किया है, "बीस वर्ष से अधिक समय हुआ है जब एक बौद्ध लामा ल्हासा से अपना परिचय-पत्र लाहुल के स्व. ठाकुर हरि सिंह के नाम लाया था। वह अपने साथ मनाली का पुराना नक्शा भी लाया था जिसमें एक पुराने बौद्ध-विहार का भी सन्दर्भ था जो पुराने समय में वहां स्थापित था। उसने बताया कि जिस लामा के पास यह विहार था उसे जल्दी में इसे छोड़ कर भागना पड़ा था और उसने अपना पुस्तकालय एक गुफा में बंद कर दिया था और दरवाज़े पर लकड़ी के शहतीर रख कर उसे मन्त्रों के शाप से ऐसा बंद किया था कि कुल्लू का कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति शहतीरों को खोल न सके। जब लामा मनाली पहुंचा तो वह मनाली मंदिर के सामने सीधा शहतीरों के ढेर के पास गया, परन्तु उस पर मन्त्रों का ऐसा प्रभाव हुआ कि वह उन्हें छू भी न सका। वह रहस्य आज तक बना हुआ है।"

भाषाविद-संस्कृति के पुरोधा थेः ठाकुर मौलू राम

डॉ. सूरत ठाकुर

हिमाचल प्रदेश के कुल्लू ज़िला की लग घाटी में शांघन गांव आबाद है। शांघन अर्थात् शामघन। शब्द व्युत्पति शास्त्र के अनुसार 'शांघन' शब्द संस्कृत शब्द शामघन का तद्भव रूप है और बड़ा सार्थक नाम है। यह गांव प्रसिद्ध व्यास नदी की सहायक नदी सरवरी नदी के सहायक नाला हेगड़ के स्रोत के निकट स्थित है। हेगड़ नाला तारापुर कोठी को दो भागों में विभक्त करता है तथा कुल्लू भलयाणी बस सेवा का कुल्लू से पंद्रह किलोमीटर दूर अंतिम छोर है। इसी शांघन गांव के जोर्लु वंश, मूल रूप से कल्हुरिया राजपूत के घर फागणु के पुत्र बुध राम के घर देश के प्रसिद्ध भाषाविद, संस्कृति कर्मी, लेखक, साहित्यकार श्री मौलू राम ठाकुर ने 18 दिसम्बर, 1928 को इस दुनियां में पदार्पण किया।

इनकी माता श्रीमती खीमी देवी और पिता श्री बुधराम के इनसे पूर्व जितने बच्चे हुए, वे कोई तो जन्म लेते-लेते और कोई एकाध वर्ष के भीतर उनसे जुदा होते गए। उन्हीं दिनों इनके इधर एक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय गूर-ज्योतिषी हुआ करते थे। उसने पूछने पर बताया गया कि तुम्हारे यहां संतानें तो हैं पर यों ही आती-जाती संतानें होंगी। उपाय पूछने पर वह बोला, ''तुम्हारा जो अगला बच्चा होगा, तुम उसे तुरन्त किसी बाहरी जाति के व्यक्ति की गोद में दे-देना और फिर उससे खरीद लेना।''

ठाकुर जी बताते थे कि संयोग से मेरे जन्म के समय खुडू नामक नड़ वार्षिक उगाई के लिए आया था तथा मेरे माता-पिता ने उसी की गोद में मुझे देकर सौदा-बाज़ी शुरू की। पिता जी बोले, ''नड़ भाई, तू इस बच्चे को लेकर कहां फिर रहा है। इसे मुझे बेच दे।'' नड़ बोला, ''मूर्ख! तूने कभी देखा किसी को अपना बच्चा बेचता हुआ। तूने यह बात कही कैसे?'' खैर, मां के शब्दों में, एक मलका (मल्लिका 1862-1901 का रूपया) देकर ले लिया। नड़ एक रुपया लेकर खुशी-खुशी घर गया और मां-बाप को बच्चे के बचे रहने की आशा बनी और बच्चे का नाम मूलू राम अर्थात् भगवान राम से मूल से लिया हुआ। जब ठाकुर जी पटियाला भाषा विभाग में नियुक्त हुए, तो निदेशक डॉ० कृष्ण मधोक ने बर्तनी यह कह कर बदल दी- ''मौलिकता रमयते यत्र तत्र मौलू राम।'' तब से इनका नाम पड़ गया मौलू राम।

सन् 1908-09 की बात है, तब तक सारे लग क्षेत्र में कोई स्कूल या पाठशाला नहीं थी। अगस्त 1908 में जालन्धर डिविज़न के कमिश्नर दौरे पर कुल्लू आये हुए थे और बजौरा के रैस्ट हाऊस में ठहरे थे। कोठी डुघी लग के नेगी बेली राम, तारापुर के महेसु नेगी, चौपाड़सा के बेलू नेगी और मानगढ़ के मूलू नेगी ने स्कूल खोलने के उद्देश्य से लाईधारंग के युवक छपे राम से, जो उस समय कोठी कोटकंढी में पटवारी के रूप में काम कर रहा था, एक आवेदन पत्र लिखवाया, परन्तु किसी भी नेगी को कमिश्नर साहिब के पास प्रार्थना पत्र देने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। बिल्ली के गले में घण्टी बांधे तो कौन? आखिर कोठी डुघीलग के नेगी बेली राम ने कहा, ''तुम

मुझे एक दुहाडू (एक बोतल शराब का चौथा भाग) पिला दो। तब मुझे हिम्मत आ जाएगी अर्जी देने की। शेष तीन नेगियों ने इसका प्रबन्ध किया और वे चारों चोला-टोपा (पारम्परिक पोशाक) पहन कर कमिश्नर के सामने प्रस्तुत हुए। कमिश्नर साहिब ने उनसे पूछा, ''नेगी, बोलो, क्या मांगता है?'' बेली राम नेगी ने आवेदन पत्र देते हुए कहा, ''साहिब, इलाका लग की हमारी चार कोठियों में एक भी स्कूल नहीं है। हम चाहते हैं कि भूठी गांव में एक स्कूल खोला जाए। यह स्थान सभी कोठियों से निकट है।'' कमिश्नर ने उससे पूछा, ''भूठी गांव तुम्हारी कोठी में है।'' ''नहीं साहिब, यह महेसु नेगी की तारापुर कोठी में है।'' बेली राम ने महेसु नेगी की ओर इशारा करते हुए कहा। जिज्ञासा स्वरूप कमिश्नर ने महेसु नेगी से पूछा, ''नेगी, तुम्हारे पहाड़ों पर जो बड़े-बड़े खेत हैं, उनको क्या कहते हैं? महेसू नेगी ने उत्तर में कहा, ''साहिब हम उन्हें 'कूटला' कहते हैं। इनमें दो वर्षों में एक फसल होती है।'' ''जाओ तुमको हमने स्कूल दे दिया।'' कमिश्नर वापिस गया तो एसिस्टेंट कमिशनर कुल्लू जी.सी.एल. होबल ने चारों नेगियों को बुलाया और पूछा, ''तुम मेरी इजाज़त के बिना कमिश्नर से क्यों मिले?'' वास्तव में सहायक कमिश्नर जानता था कि इस क्षेत्र में स्कूल खोलना आसान है, परन्तु स्कूल चलाना कठिन, क्योंकि लोग बच्चे दूर स्कूल में नहीं भेजते थे। नेगियों के पास उसके प्रश्न का उतर नहीं था, और एसिस्टेंट कमिश्नर ने कहा, ''स्कूल खोल दिया जाएगा। परन्तु यदि स्कूल सफलता पूर्वक नहीं चला तो तुम चारों को डिसमिस कर दिया जाएगा।'' ऐसी स्थिति में नेगी गांव-गांव, घर-घर जाकर लड़के इकट्ठा करते रहे और प्रथम श्रेणी के लिए जो लड़के ढूंढ निकाले और स्कूल में दाखिल किए गए, उनमें महेसू नेगी का अपना बेटा छपे राम और बड़ाग्रां का लड़का सूरता राम 22-23 वर्षों के शादी-शुदा जवान भी थे।

भूठी स्कूल शांधन गांव से लगभग तीन किलोमीटर दूर है। खड्डों और नालों से गुज़र कर वहां पहुंचना पड़ता है। स्कूल जाते समय तीन किलोमीटर की उतराई और वापिस आते हुए उतनी ही चढ़ाई कोई साधारण बच्चों के लिए सहज नहीं है। फिर भी इनके पिताजी ने इन्हें स्कूल में दाखिल करा लिया।

श्री मौलू राम ठाकुर सन् 1944 में कुल्लू के हाई स्कूल में दाखिल हुए। साहित्यिक अभिरुचि के बारे में वे कहते थे कि मैं अपनी साहित्यिक अभिरुचि के प्रोत्साहन का श्रेय अपने इसी हाई स्कूल, ढालपुर कुल्लू तथा उसके स्टाफ को देता हूं। मुख्याध्यापक स्वामी दास जैसा योग्य हैडमास्टर न पहले यहां आया न संभवतः बाद में आयेगा। बड़ा अनुशासन-प्रेरक और साहित्यकार था। एक अध्यापक खुशदिल था, जिसका पूरा नाम हम नहीं जानते थे, परन्तु उसका उपनाम ही अपने आप में शायर, गज़लकार और गज़लगो होने का सबूत था। जहां बैठते शायरी जमा लेते थे। खुशदिल के मार्गदर्शन से ठाकुर मौलूराम ने छोटे-छोटे लेख लिखने आरम्भ किये। फागुन की बरसात, देवी-देवताओं का अखाड़ा-विजयदशमी, क्या कश्मीर भारत का अंग होना चाहिए या पाकिस्तान का, 1857 का गदर और रानी झांसी आदि उनके प्रारम्भ के लेख हैं।

मौलू राम जी 1953-56 के दौरान मैं एसिस्टेंट कमिश्नर-कम-प्रोजेक्ट (बाद में स्वतंत्र बीडीओ) के साथ स्टैनोग्राफर नियुक्त हुए। उन दिनों एम.एस.रंधावा फाईनैंशियल कमिश्नर थे। उन्होंने पंजाब के सभी खण्ड विकास अधिकारियों को पत्र लिखे कि वे अपने-अपने क्षेत्र के लोकगीत एकत्र करके उन्हें भेजें। उनके लिए उन्होंने 64 पृष्ठों की छोटी कापी लोकगीतों की भर कर भेजी थी। रंधावा साहिब ने अपने नाम से जो 'कुल्लू के लोकगीत' पुस्तक लिखी, उसमें मौलूराम ठाकुर के लोकगीत सबसे अधिक शामिल थे।'

वास्तव में ठाकुर जी का जीवन क्लर्की के लिए नहीं था, इनका जन्म तो साहित्य सेवा के लिए था। अतः ये 1960 में सामुदायिक विकास योजना की सेवा छोड़कर भाषा विभाग पंजाब पटियाला चले गए। प्रथम नवम्बर 1966 को जब पंजाब का पुनर्गठन हुआ तो इनकी सेवाएं हरियाणा सरकार को सौंपी गई। क्योंकि हरियाणा राज्य का गठन पूर्णतया भाषा के आधार पर हुआ था, इसलिए हिन्दी में प्रशासन के कार्य को अधिक गम्भीरता से लिया गया। इस बार इन्होंने लिपि ज्ञान के साथ-साथ व्याकरण का विषय भी पढ़ाई का अंग बनाया। इस बार अधिकारियों का आग्रह था कि हिन्दी भाषा की अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षण की कोई पुस्तक नहीं है। इसलिए इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाए।

ऐसी परिस्थितियों में इन्होंने पहली पुस्तक 'An Easy way to Hindi and Hindi Grammar' प्रकाशित की। यह 355 पृष्ठों की पुस्तक है, जिसमें वर्णानुक्रमिक ज्ञान तो है ही, साथ में हिन्दी का पूर्ण व्याकरण भी अंग्रेज़ी भाषा में दिया गया है। भारत सरकार, शिक्षा और युवा सेवाएं मंत्रालय ने 1971 में इसे अंग्रेज़ी माध्यम से हिन्दी शिक्षा की सर्वोतम पुस्तकों में से एक आंका है और इसकी थोक खरीद की गई है।

इसी बीच ठाकुर जी का स्थानान्तरण शिमला में हुआ, जहां 1972 में हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी की स्थापना हुई। इसमें मुख्यमन्त्री महोदय अध्यक्ष और स्व० श्री लालचन्द प्रार्थी मन्त्री, उपाध्यक्ष थे। अन्य सदस्यों में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर भी थे। अकादमी की अनेक बैठकों में यह आग्रह होता रहा कि विश्वविद्यालयों में पहाड़ी भाषा और उसकी उपभाषाओं पर शोधकार्य किया जाये। तब हिन्दी और संस्कृत विभागों में उतर-प्रदेश और पंजाब के प्राध्यापकों का वर्चस्व था और वे ऐसा करने के लिए तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि पहाड़ी भाषा का न तो कोई व्याकरण है, न कोई साहित्य है और न ही इसकी कोई लिपि

है। इसलिए इस पर कोई शोधकार्य नहीं हो सकता। मन्त्री महोदय ने ठाकुर जी को इसका समाधान ढूंढने के लिए कहा। ऐसी स्थिति में इनके विचाराधीन पुस्तक के प्रकाशन का विषय तुरन्त पूरा किया जाना ज़रूरी हुआ। इसी निमित उन्होंने 'पहाड़ी भाषा-कुलुई के विशेष संदर्भ में' पुस्तक लिखी और इसकी पहली प्रति मन्त्री महोदय द्वारा मुख्यमन्त्री को दी। जब यह प्रति वाइस चान्सलर को दी गई तो वे भाषा के महत्व को समझ गये। परिणामतः विश्वविद्यालय में हिमाचली भाषा पर शोध होने लगे। डॉक्टर विद्याचन्द ठाकुर पहले विद्वान हैं, जिन्होंने "कुलुई बोली में संस्कृत निष्ठ शब्द" विषय पर पी.च.डी. कार्य किया और भावी शोधकर्ताओं के लिए इस तरह का कार्य करने हेतु मार्ग प्रशस्त किया।

उन्होंने स्वाध्याय से ही एम.ए. (राजनीति), हिन्दी में ऑनर्ज़, चीनी भाषा में डिप्लोमा, तिब्बती भाषा में स्वर्णपदक के साथ डिप्लोमा प्राप्त किया। चालीस वर्षों की सरकारी सेवा में ज़िला भाषा अधिकारी, वरिष्ठ प्रवक्ता, पुरातात्विक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, सचिव हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, संग्रहालयाध्यक्ष हिमाचल राज्य संग्रहालय, आदि विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए 1986 में भाषा संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश के उप-निदेशक पद से सेवानिवृत्त हुए।
वे हिमाचल लोक प्रशासन संस्थान के फैकल्टी मैंबर; हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के युवा-उत्सवों के निर्णायक; अखिल भारतीय हिन्दी भाषी राज्यों की राजभाषा समिति के सदस्य; हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के सदस्य, 'हिमभारती' और 'सोमसी' पत्रिकाओं के सम्पादक, पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश के कार्यकारी सम्पादक भी रहे।

भाषा पर लिखी इनकी पुस्तक "पहाड़ी भाषा : कुलुई के विशेष संदर्भ में" पुस्तक उतर प्रदेश हिन्दी परिषद द्वारा पुरस्कृत हुई है। इसके अतिरिक्त "हिमाचल में पूजित देवी-देवता", "Myths Rituals and Beliefs of H.P", "हिमाचल के लोकनाट्य एवं लोकानुरंजन", "लामण-लोकगीत संग्रह", "मनोरंजक पहाड़ी लोककथाएं", "Folklore of Himachal Pradesh" ,''पहाड़ी संस्कृति मंजूषा'', ''वैदिक आर्य और हिमाचल'', ''कुल्लू दशहरा एवं देव परम्परायें'', ''हिमाचल की लोककलायें एवं आस्थाएं", ''हिमाचली'' आदि दर्जन से अधिक पुस्तकों के लेखक ने यहां के साहित्यिक, सांस्कृतिक, और ऐतिहासिक धरोहर पर सर्वेक्षणात्मक तथा अनुसन्धानात्मक अध्ययन किया है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर बहुत से छात्रों के एम.फिल के लघुशोध प्रबन्ध भी स्वीकृत हुए हैं।

पहाड़ी भाषा और साहित्य में विशिष्ट योगदान के लिए राष्ट्रीय साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा भाषा सम्मान-1996, से पुरस्कृत; हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा "वैदिक आर्य और हिमाचल" पुस्तक को प्रतियोगिता के आधार पर सर्वश्रेष्ठ घोषित करके राज्य सम्मान-2007 से अलंकृत; हिमाचल कला, संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा "पहाड़ी संस्कृति मंजूषा" पर साहित्य पुरस्कार से सम्मानित हैं। इसी प्रकार यशपाल साहित्य परिषद् नादौन ने वर्ष 1984 में, हिम साहित्य परिषद्, मण्डी ने 1996 में, भुट्टी वीवर्ज़ को आपरेटिव सोसायटी, भुट्टिट कालोनी ने 1998-99 में, हिमोत्कर्ष साहित्य एवं संस्कृति परिषद् ऊना ने 2000 में तथा साहित्य एवं कला परिषद् कुल्लू ने 2005 में, पुरस्कृत करके लेखक की साहित्य साधना का मान बढ़ाया है।

मैं सन् 1983 में इनके सम्पर्क में आया, जब ये हिमाचल कला, संस्कृति भाषा अकादमी के सचिव हुआ करते थे। मैं 'चम्बयाली और कुलुई संगीत का सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर तुल्नात्मक अध्ययन' नामक विषय पर शोधकार्य कर रहा था। उस समय इन्होंने मुझे शोधकार्य के लिए प्रेरित किया था और बहुत से सुझाव भी दिए थे, जिस कारण मैं तीन वर्ष के अन्दर पी.एच.डी. करने में सफल हुआ। मैनें लेखन के क्षेत्र में बहुत से लोगों को देखा है, जो थोड़ा बहुत लिखने के बाद हर समय अपनी प्रशंसा का राग अलापते रहते हैं, परन्तु ठाकुर जी ने कभी भी अपने लेखन कार्य की आत्मश्लाघा नहीं की। दूसरों के कार्य को हमेशा प्रशंसित करके उनका हौसला बढ़ाते रहे।

अध्ययन और स्वाध्याय उनका मुख्य शौक था उनके निजी पुस्तकालय को देखकर सहज ही समझा जा सकता है कि उन्होंने कितना अध्ययन किया होगा। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता जैसे शास्त्रों का गहन अध्ययन तो किया ही, इसके साथ-साथ इतिहास, संस्कृति, अध्यात्म, दर्शन और भाषा से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन वे ही कर सकते थे। उनके लेखन में सरल और सहज आम बोल-चाल के शब्दों का समावेश देखने को मिलता है। यही कारण है कि उनकी पुस्तकें सभी पाठकों को आसानी से समझ आती हैं। सरल शब्दों में किसी विषय का विश्लेषण करने की क्षमता और भाषा वैज्ञानिक आधार पर तथ्यों को संजोना उनकी विशेषता थी। कर्मठता, स्मृति, चिन्तन, परिश्रम, लगन, उत्साह, सरलता, विषय की गहनता, व्यवहारिकता, तत्परता, सहानुभूति, श्रद्धा, सहजता, देव-संस्कृति समर्पण, भाषा, कला, व संस्कृति की संरक्षणता इत्यादि गुण उनके व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान थी। बेशक आज वे हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनकी लेखनी आज भी शोधार्थियों, लेखकों, साहित्यकारों का मार्गदर्शन करते हुए उनके हमारे बीच होने का आभास करवाती हैं।

सेवानिवृत प्रोफेसर
गांव परगानू डाकघर भून्तर
तहसील भून्तर जिला कुल्लू हि.प्र.

हिमाचल प्रदेश के प्रतिभाशाली साहित्यकार का निधन

हिमाचल प्रदेश के नामवर साहित्यकार, कथाकार, सामाजिक कार्यकर्त्ता मौलू राम ठाकुर का एक लम्बी बीमारी के पश्चात् अपने पैतृक गांव शांघड़ लग घाटी ज़िला कुल्लू में जीवन के तिरानवेवें पड़ाव में इस अनित्य संसार से विदा हो गए हैं। उनका बचपन पूर्णतः पहाड़ी ग्रामीण परिवेश में गुज़रा। बाल्यकाल में कुल्लू के हाई स्कूल से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आगामी जीवन यात्रा के लिए सरकारी नौकरी को तरजीह दी।

आरंभिक नौकरी तत्कालीन पंजाब सरकार के खण्ड विकास अधिकारी के कार्यालय में लिपिक के रूप में की। तत्पश्चात् कला, भाषा और संस्कृति विभाग में अनुसंधान अधिकारी के पद पर नियुक्ति हुई। पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों का हिमाचल प्रदेश सरकार में विलय होने पर इसी विभाग में उपनिदेशक के पद को संभाला। और इसी पद से सेवा निवृत्त हुए। ठाकुर जी के साथ मेरा परिचय उन के लिपिक कार्यकाल में हुआ था। अपने सेवा काल में उन्होंने तिब्बती तथा चीनी भाषा का डिप्लोमा किया। तिब्बती भाषा के कारण मेरी उन से घनिष्टता बढ़ती गई और हम तिब्बती बौद्ध धर्म और साहित्य को लेकर चर्चाएं किया करते थे।

ठाकुर जी के अध्यवसाय की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने उन्हें पांडित्य प्रदान किया जिस का सहज प्रभाव उन के साहित्य पर भी पड़ा। ठाकुर जी की रचनाओं में हिन्दी, अंग्रेज़ी के दर्जन भर पुस्तकें हैं। ये हैं- कुल्लू दशहरा और देव परम्पराएं, कुल्लवी व्याकरण और हिमाचली भाषा, पहाड़ी संस्कृति, वैदिक आर्य और हिमाचल, कुल्लवी भाषा, हिमाचल की लोक कलाएं और आस्थाएं, An Essay to Himachali and Hindi Grammar, Myths Rituals and Beliefs in Himachal Pradesh, Folk Lores of Himachal Pradesh.

ठाकुर जी के देहावसान से हिमाचल प्रदेश विशेषकर कुल्लू और लाहुल स्पीति के साहित्य जगत में अपूर्णीय क्षति हुई है जिस की क्षति पूर्ति निकट भविष्य में नामुमकिन सा लगता है।

ओम शान्ति! ओम शान्ति!! ओम शान्ति!!!

छेरिङ दोर्जे
गांव गुस्क्यर, लाहुल

स्वर्गीय श्री एम० आर० ठाकुर जी के प्रति चन्द्रताल परिवार हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है!!

सम्पादक

जीवन शैली की बीमारियाँ - एक महामारी

डॉ. जे.पी. नारायण

जीवन शैली की बीमारियाँ या गैर-संक्रामक बीमारियाँ विश्व में तेज़ी से फैल रही हैं। ये बीमारियाँ आदमी में धीरे-धीरे बढ़ती हैं तथा लम्बे समय तक रहती हैं। हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 90 लाख 60 हज़ार मौतें होती हैं, जिनमें से 60 लाख मौतें (63%) जीवन शैली तथा गैर संक्रामक बीमारियों के कारण से होती हैं।

इनमें हृदय रोग, फेफड़ों के लम्बे समय तक चलने वाले रोग, कैंसर तथा डायबीटीज़ प्रमुख हैं। डायबीटीज़ के रोगियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में भारत दूसरे स्थान पर है। हमारे देश में 6 करोड़ 30 लाख लोग डायबीटीज़ यानि मधुमेह रोग से ग्रस्त हैं। भारत में प्रति 12 वयस्कों में एक व्यक्ति को मधुमेह है।

यह सच्चाई है कि ये बीमारियाँ लाहुल स्पीति में भी अपनी जड़ें जमा चुकी हैं। केलंग अस्पताल के आंकड़े दर्शाते हैं कि जिले की 70% मौतों का कारण जीवन शैली की बीमारियाँ हैं। पहले यह माना जाता था कि ये वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियाँ हैं। इस आम धारणा के विपरीत जीवन शैली की बीमारियाँ युवाओं को भी अपने चपेट में ले रही हैं, जिसके फलस्वरूप देखरेख तथा उपचार पर बेतहाशा खर्च हो रहा है। इन बीमारियों पर होने वाला व्यय आसमान छू रहा है। उपचार के भारी-भरकम खर्चों के कारण समाज में गरीबी तथा असमानता बढ़ रही है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इस तरह की बीमारियों के उपचार पर होने वाले भारी खर्चों से देश में प्रति वर्ष 6 करोड़ लोग गरीबी के गर्त में दब जाते हैं।

इस मूक महामारी के फैलने के चार प्रमुख कारण हैं - तम्बाकू का प्रयोग, अस्वास्थ्यकर भोजन, शारीरिक गतिविधियों का अभाव तथा अल्कोहल का अनुचित प्रयोग। ये सभी कारण ऐसे हैं, जिनसे व्यक्ति चाहे तो, बचा जा सकता है। ये चीज़ें हमारे समाज में गहरी जड़ें जमा चुकी हैं। वैश्वीकरण, तेज़ी से बढ़ता शहरीकरण, वृद्धों की बढ़ती आबादी, बदलती जीवन शैली तथा समाज में व्याप्त असमानता ने आग में घी डालने का काम किया है। अर्थात् दूसरे शब्दों में इन बीमारियों को अधिक बढ़ा दिया है।

घर पर तैयार भोजन के स्थान पर चीनी, नमक तथा हानिकारक वसा से भरी पड़ी खाद्य वस्तुओं के प्रयोग से मोटापा बढ़ने के फलस्वरूप जीवन शैली की बीमारियों का खतरा बढ़ रहा है। दूसरी ओर लगभग 80% जनसंख्या पर्याप्त फल और सब्ज़ियों का उपयोग नहीं करती तथा एक चौथाई जनसंख्या की पर्याप्त शारीरिक गतिविधियां सीमित हैं। लोग बैठे रह कर करने वाले काम अधिक करने लगे हैं।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 4 जनवरी, 2008 को प्रायोगिक आधार पर राष्ट्रीय कैंसर, मधुमेह, हृदय रोग तथा बचाव तथा नियंत्रण कार्यक्रम आरम्भ किया था। बाद में इसका विस्तार 21 राज्यों के 100 ज़िलों में किया गया। वर्ष 2015 में इसे पूरे देश में लागू किया गया। इन बीमारियों से बचाव के लिए मात्र 3% स्वास्थ्य बजट है जो ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। निकट भविष्य में हम कोई विशेष कर पायेंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता।

मिथ्या धारणायें तथा तथ्य

जीवन शैली की बीमारियों के मामले में कुछ ऐसी मिथ्या धारणायें हैं जो इन्हें स्वास्थ्य के मुद्दे बनने में बाधक हैं, तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम के क्रियान्वयन को उसके सही अंजाम तक पहुँचने नहीं देती। अधिकतर लोगों की धारणा है कि जीवन शैली की बीमारियाँ अमीर लोगों की बीमारियाँ हैं। गरीब लोगों को ऐसी बीमारियों की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। यही भी माना जाता है कि ऐसी बीमारियाँ बुढ़ापे में लोगों को घेरती हैं। एक मिथ्या धारणा यह है कि कैंसर होने का अर्थ सीधा मौत का बुलावा तथा इसका कोई बचाव तथा उपचार नहीं है। सच्चाई यह कि ये बीमारियाँ अमीर तथा गरीब दोनों को प्रभावित करती हैं। वास्तविकता यह भी है कि गरीब लोगों को इनका खतरा अधिक है। एक तो गरीब लोग इन बीमारियों के होने की जोखिमों से घिरे रहते हैं तथा दूसरी ओर उनकी पहुँच स्वास्थ्य देखरेख तक बहुत कम है। जीवन शैली की बीमारियों पर गरीब लोगों को अपनी जेब से खर्च करना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप काफी परिवार गरीबी के गर्त में गिर जाते हैं बाद में जिससे निकलना उनके लिए मुश्किल हो जाता है।

एक अच्छी बात, जिसकी ओर सबका ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए वह यह है कि जीवन शैली की बीमारियों से बचाव तथा उपचार की कम लागत वाली तकनीकें उपलब्ध हैं। इन बीमारियों से बचाव का अर्थ है - जीवन शैली में परिवर्तन लाना। इच्छा शक्ति तथा इस दिशा में प्रचार-प्रसार से इस प्रकार के परिवर्तन कम खर्चे में आसानी से लाए जा सकते हैं। तम्बाकू का प्रयोग न करना, शराब न पीना, शारीरिक गतिविधियों में शामिल होना तथा हानिकारक एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली खाद्य वस्तुओं का प्रयोग न करना ये कुछ ऐसी बातें तथा रणनीतियाँ हैं कि जिन पर चलकर 80% तक हृदय रोग तथा मधुमेह से बचा जा सकता है। कुछ किस्म के कैंसरों का संबंध वायरल संक्रमण से है, जिन्हें टीकाकरण से बचाया जा सकता है अथवा पूरी तरह समाप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए लिवर तथा सर्वाईकल कैंसर से बचाव के लिए हैपिटाइटिस बी एवं ह्यूमन पपिलोमावायरस टीकाकरण कारगर सिद्ध हुआ है। ये दोनों ही हमारे राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम के हिस्से हैं।

एक बहुआयामी रणनीति की तुरंत आवश्यकता

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जीवन शैली की बीमारियों से बचाव संभव है। यदि दुर्भाग्यवश इन बीमारियों की जकड़ में कोई आ जाता है तो, उनका उपचार हो सकता है। कैंसर जैसी घातक बीमारी का समय पर पता लगने पर पूरी तरह उपचार किया जा सकता है। जीवन शैली की बीमारियों से बचाव के लिए मुख्यतः जिन रणनीतियों को अपनाने की आवश्यकता है, उनमें शामिल हैं

1) जिन कारणों से ये बीमारियाँ होती हैं, उनसे बचाव करना तथा तदनुसार जीवन शैली में परिवर्तन लगना,

2) स्क्रीनिंग के माध्यम से बीमारियों का जल्दी पता लगाना,

3) बीमारी होने पर इलाज का प्रबंध करना।

1) बीमारी से बचाव एवं स्वास्थ्य संवर्धन तथा तम्बाकू एवं शराब के हानिकारक दुष्प्रभावों के बारे में जन-जन में जागरूकता पैदा करना आवश्यक है। हमें स्वास्थ्यकारक भोजन के बारे में बताने की आवश्यकता है। तम्बाकू का सेवन छोड़ने से न केवल धूम्रपान करने वालों बल्कि उनके आस पास के लोगों का दीर्घकालिक रोगों से बचाव हो सकता है। प्रति दिन 30 मिनट के लिए शारीरिक गतिविधि जैसे पैदल चलना, साइकिल चलाना, खेलकूद में भाग लेने से इस प्रकार की बीमारियों के होने का खतरा काफी कम हो जाता है।

2) स्वास्थ्यकारक भोजन परिवर्तनों में शामिल हैं - संतृप्त वसा खाद्य वस्तुओं के प्रयोग की बजाय कम वसा वाली लाभदायक खाद्य वस्तुओं का सेवन करना, नमक तथा चीनी का कम, पर फलों तथा सब्जियों का अधिक प्रयोग करना है। जलेबी तथा पकौड़े, जिन्हें डालडा अथवा वनस्पति घी में फ्राई किया जाता है, बहुत अधिक हानिकारक है। इसके अलावा अचार, आलू के चिप्स आदि खाद्य पदार्थों का प्रयोग कम से कम करना चाहिए। सफेद, रिफाइंड, गेहूँ के आटे के स्थान पर भूसी वाले आटे तथा मोटे अनाजों का प्रयोग किया जाना चाहिए। पोलिश किए गए चावल की बजाय बिना पोलिश वाला चावल स्वास्थ्यकारक है।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी कानून की भी विशेष भूमिका है। तम्बाकू तथा शराब पर और कर बढ़ाया जा सकता है। तम्बाकू पैकेटों पर स्वास्थ्य चेतावनी अथवा सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान निषेध, तम्बाकू तथा शराब के प्रयोग को बढ़ावा देने वाले विज्ञापनों, तथा इनके प्रायोजकों पर कड़े प्रतिबंध लगाए जाने चाहिए अधिक नमक, वसा चीनी वाली खाद्य वस्तुओं के विपणन को हतोत्साहित करने की आवश्यकता भी है। कानून न केवल बनाए जाएँ बल्कि उन्हें कठोरता से लागू करने की समुचित व्यवस्था भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

इन दीर्घकालिक बीमारियों का एक कारण तथाकथित आधुनिक जीवन भगमभाग तथा तनाव भी है। भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में किए गए वैज्ञानिक विश्लेषणों से पता चला है कि योग से न केवल चिंता तथा तनाव घटता है बल्कि रक्तचाप, हृदयरोग तथा मधुमेह के प्रबंधन में भी सहायता मिलती है।

3) इस बात पर भी बल देने की आवश्यकता है कि जल्दी पता लगने पर कुछ जीवन शैली की बीमारियाँ जैसे कैंसर तथा हृदय रोग के लक्षण घटे हैं तथा उनका पूरी तरह उपचार भी हुआ है। सरकार ने हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप और तीन प्रकार के कैंसर अर्थात् स्तन, सर्विक्स तथा मुँह के कैंसर का पता लगाने के लिए स्क्रीनिंग कार्यक्रम शुरू किए हैं।

चालीस वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों के लिए अपना वार्षिक स्वास्थ्य परीक्षण और सकारात्मक उपायों द्वारा इस प्रकार की बीमारियों से बचाव तथा बढ़ने से रोकने में काफी सहायता मिल सकती है। इसके अलावा उपर्युक्त व्यवस्थाएँ सुनिश्चित किए जाने से जटिलताओं, अस्पताल में भर्ती होने तथा रोगी को जेब से व्यय करने से छुटकारा मिल सकता है। स्क्रीनिंग इसलिए भी आवश्यक हैं क्योंकि 70 से 80% रोगियों को अपने बीमारी का पता ही नहीं होता।

4) जीवन शैली की बीमारियों के बचाव के प्रयासों के बावजूद कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें समय के साथ में बीमारियाँ घेर लेती हैं। उनके लिए उपचार तथा निरंतर फॉलोअप किया जाना आवश्यक है। रोग का निदान तो किसी संस्था में ही हो सकता है लेकिन देखरेख समुदाय तथा घर पर संभव है। अतः स्वास्थ्य केन्द्रों तथा समुदाय को परस्पर सम्बद्ध करने की आवश्यकता है।

इसके लिए स्वास्थ्य प्रणाली क्षमता जैसे स्वास्थ्य कर्मचारियों की संख्या बढ़ाना एवं चिकित्सा आपूर्ति प्रणाली को सशक्त बनाने की आवश्यकता है। दूर दराज़ के क्षेत्र जैसे लाहुल एवं स्पीति में स्वास्थ्य कर्मियों की बेहद कमी है। इसके अलावा टेलीमेडिसन, मोबाइल टैक्नोलॉजी आदि आधुनिक तकनीक द्वारा भी रोगी की दहलीज़ तक पहुँचा जा सकता है तथा रोगी का उपचार किया जा सकता है।

भारत सरकार द्वारा हाल ही में शुरू की गई योजनाएँ जैसे 'आयुष्मान भारत' भी इस दिशा में भारी परिवर्तन ला सकती है। इस योजना के अन्तर्गत हर निर्धन परिवारों को बीमारी के इलाज के लिए प्रतिवर्ष पांच लाख रुपये बीमा का प्रायोजन है। इसके साथ स्वास्थ्य उप केन्द्रों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को 'हेल्थ एण्ड वेलनेस सेंटर' में परिवर्तित करने की व्यवस्था की जा रही है। देश में प्राथमिक स्वास्थ्य स्तर पर इस प्रकार की सेवाओं की उपलब्धता में खासी प्रगति हो सकती है।

अंत में, जीवन शैली की बीमारियों का सामना करने के लिए सभी स्तरों पर राजनीतिक इच्छा शक्ति, नेतृत्व और भागीदारी भी आवश्यक है। राज्य, ज़िला तथा पंचायत स्तर पर सम्पूर्ण प्रतिबद्ध ता तथा समाज के सभी वर्गों एवं समुदायों की पूर्ण भागीदारी के बिना जीवन शैली की बीमारियों से बचाव तथा नियंत्रण संभव नहीं है। आइए, अपने संयुक्त प्रयासों से जीवन शैली तथा गैर संक्रामक बीमारियों से बचाव तथा उपचार के क्षेत्र में हर संभव योगदान करें और 'स्वस्थ भारत' बनाएँ।

स्पीति घाटी की गुफा

श्रिनमो खदा

विजय कुमार बौद्ध

स्पीति घाटी को जीता जगता संग्राहलय (living museum) कहा गया है। ताबो की प्राचीन गुफा के कारण इसे (Ajanta of Himalayas) का दर्जा प्राप्त है। स्पीति घाटी में (pre & historic rock art) का विशाल भंडार है, खासकर प्राचीन (salt trade route) में रॉक आर्ट के बेमिसाल नमूने देखने को मिलते हैं।

Pre & historic site की श्रेणी में एक स्थान है, श्रिनमो खदा। आज उसी की पुनः चर्चा करने जा रहा हूँ।

श्रिनमो खदा (devil's open mouth) - शैतान का खुला हुआ मुख, नामक ये गुफा या कह लीजिये एक तरफा सुरंग है। जिसके एक छोर से आप भीतर प्रवेश कर सकते हैं, लेकिन दूसरे छोर पर भयानक गहरी खाई है। शायद इसीलिए इसका ये नाम रखा गया है ।

2015 की बात है, चिचम-किब्बर पुल अभी बनकर तैयार नहीं हुआ था। क्य-टो से ला-दरचा का कोरा लेकर हम चिचम पहुंचे। अगली सुबह गुफा के लिए तड़के ही निकल पड़े थे। फिसलन, थकान और पीठ पर लदा भारी सामान लिए जैसे-तैसे 4740 की (altitude) पर गुफा के मुख तक पहुंचे। गुफा 24 फुट लम्बी थी। (North & West) छोर से किब्बर, चिचम, कीह्-गोम्पा, काज़ा, परङ ला, टशि ज़ोङ को (spot) किया जा सकता था। (South East end), जो कि भयानक खाई वाला छोर था, वहां से स्पीति नदी का सुन्दर शाखा-नुमा (river bed) बर्फीले शिखर, हल गांव, सुमलिङ गांव, नीमा लोकसा और काज़ा-मनाली (highway) दिखाई पड़ रहा था। गुफा की दीवारों में (pre & historic wall paintings] ochre red) में उकेरी गयी हैं। इन्हें देखने ही हम इतने कष्ट सह कर पहुंचे थे। ये (paintings), आज के टाइम में सरल और प्लेन लगे, लेकिन एक (archaeologist) पुरातत्वविद की नज़रों में ये बेशुमार दौलत से कम नहीं। मैंने देखा था उनकी आंखों में छलक रहे गर्व और खुशी को। कुछ दूर पर (Buddhist votive stupas) का ढेर भी रखा हुआ था। कहा जाता है कि अपने पूर्वजों और प्रियजनों की

वोटिव स्तूप एवं मूर्तियां

चट्टान पर प्रागैतिहासिक चित्रण

याद में स्पीति वासी, votive stupas को यहाँ रख जाते हैं। पहाड़ों में ऊँचे स्थान को काफी पवित्र होने का दर्जा दिया जाता है मान्यता यह है कि ऊंचाई के साथ अपने प्रियजनों से संपर्क साधना उतना ही सरल हो जाता है। सिंपल लॉजिक है लेकिन निभाना उतना ही कठिन। इसी तरह, ञिमा लोकसा के नाम से जाना जाने वाला पॉइंट उस से जुड़ा practical logic भी काफी रोचक है।

कहा जाता है कि सुमलिङ गांव के सामने वाले पहाड़ की एक specific चोटी के पास तक सूर्य अस्त होना शुरू होता है, तो उसके बाद सूर्यास्त का वो cycle reverse हो जाता है और फिर वापिस अपने orbit पर चल पड़ता है। इस चोटी को ञिमा लोकसा के नाम से जाना जाता है, (the land of returning sun)। तो ञिमा लोकसा में सूर्य की वापसी के बाद ही स्पीति के किसान खेती जैसे महत्वपूर्ण कार्य का आगाज़ करते हैं। समझ लीजिये, पुराने लोगों का (natural calendar system) रहा है ञिमा लोकसा का कांसेप्ट। तो बस मोरल ऑफ दी स्टोरी यही है, कि कभी स्पीति जाना हुआ तो:, श्रिनमो खदा और ञिमा लोकसा को थोड़ा एक्स्प्लोर और एक्सपीरियंस करें। अपने क्षेत्र के लोगों और उनके अतीत से जुड़ने connect होने का ये सबसे आसान तरीका है शायद।

– सहायक पुरातत्वविद,
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,
काँगड़ा दुर्ग, काँगड़ा

लाहुली बोलियों में लिपि की समस्या और समाधान

सतीश कुमार लोप्पा

कोस-कोस पे बदले पानी,
चार कोस पे बानी।

यह एक पुरानी कहावत है। इस में देश की भाषाई विविधता की बड़ी सच्चाई छिपी है। हम अपने आस-पास इस सच्चाई को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। हिमाचल प्रदेश में भी कितनी ही स्थानीय भाषाएं यहां के विभिन्न क्षेत्रीय समुदायों द्वारा बोली जाती हैं। इन स्थानीय भाषाओं की अपनी कोई अलग लिपि नहीं होने के कारण इन्हें लिखित रूप में लाना बड़ी चुनौती बन जाती है। प्रायः प्रचलित लिपियां इन भाषाओं के लिए पूरी तरह उपयुक्त नहीं होती हैं। इन में उक्त भाषाओं की कई भाषिक ध्वनियों का सर्वथा अभाव देखा जाता है। वर्तनी की भी समस्याओं से जूझना पड़ता है। नागरी लिपि और स्थानीय भाषाओं के साथ भी यही समस्या है। यदि लाहुल जैसे क्षेत्र में प्रचलित किन्नर-किरात भाषाओं की बात करें तो समस्या और विकट हो जाती है।

छोटी सी आबादी वाले लाहुल में बहुत सी बोलियां आज भी प्रचलन में हैं। आर्यभाषा परिवार की तीन बोलियां - चिनल भाषे, लुहर भाषे, तिन्दयाली; भोटी की तीन विभाषाएं - तोदपा, मयाड़ी, रङलोई; तीन किन्नर-किरात भाषाएं - चङ्सो भाषे, गाहूरि भाषे, तिनन भाषे। पुराने दौर के विद्वानों ने आखिर के इन तीन भाषाओं को क्रमशः मन्चद, पुनन और तिनन नाम दिया है। साथ में यह दर्शाना भी प्रासंगिक है कि चङ्सो भाषे की दो स्पष्ट अन्तर्धाराएं भी प्रचलन में है। एक स्वङ्ला समुदाय द्वारा बोली जाने वाली तथा दूसरी बौद्ध समुदाय द्वारा बोली जाने वाली। लेकिन व्याकरण की दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं है सिर्फ लहजे और बलाघात आदि का बाहरी अन्तर है।

यहां पर लाहुल के मुलिङ से मङुङ (मड़ग्राँ) तक की चन्द्र-भागा की संयुक्त घाटी में बोली जाने वाली भाषा चङ्सो भाषे (मन्चद/पटनी) को केन्द्र में रख कर, इस के लिए एक अदद लिपि की आवश्यकता पर चर्चा की जाएगी। पहला प्रश्न यही उठता है कि कौन सी लिपि? क्यों कि इस भाषा की अपनी कोई लिपि आज तक बनी ही नहीं। तो क्या नितान्त नई लिपि ईजाद की जाए? यह अत्यन्त दुरूह कार्य है। एक तो लिपि का निर्माण करना और फिर उसे जन-जन को सिखाना, वह भी आज के जैसी शिक्षा व्यवस्था के परिवेश में, बहुत-बहुत कठिन है। दूसरा विकल्प है आस-पास के प्रचलित और विकसित किसी लिपि का चयन किया जाए जो इस भाषा के लिए सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो। कुछ लोग भोटी लिपि सुझाते हैं, लेकिन इस लिपि की भी अपनी ही समस्याएं हैं। इस में कई सारी ध्वनियां अनुच्चरित रहती हैं, कई पूर्वाक्षर-पराक्षर हैं, कई सारे संयुक्ताक्षर जो लिखे कुछ जाते हैं और पढ़े कुछ जाते हैं। वहीं, इस क्षेत्र में यह लिपि आज आधुनिक शिक्षा प्रणाली के चलते गोम्पाओं तक ही सीमित हो गई है। इस कारण उपरोक्त भाषा-भाषियों को शुरू से यह लिपि सिखानी पड़ेगी जो एक बड़ी चुनौती होगी क्योंकि नई पीढ़ी पहले ही अंग्रेज़ी स्कूलों का रुख कर चुकी है। अगले विकल्प के रूप में जो सब से सुलभ और उपयोगी लिपि दिखाई देती है, वह है नागरी लिपि। इस लिपि की सब से बड़ी ताकत यह है कि यह जैसी लिखी जाती है वैसी ही पढ़ी भी जाती है। इस क्षेत्र का बच्चा-बच्चा इस लिपि से बहुत अच्छी तरह परिचित है। किसी को नए सिरे से कुछ भी सिखाना नहीं है। बस वर्तनी को स्थिर करना है, और अपनी जीह्व को अभ्यस्त करना है। इसी लिए हमेशा नागरी का पक्ष लेता हूं। वास्तव में आज की परिस्थितियों में नागरी ही इन स्थानीय भाषाओं की लिपि बनने की अधिकारिणी है।

नागरी लिपि संस्कृत-हिन्दी आदि आर्यभाषाओं की भाषिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाई गई है। इस लिए चङ्सो भाषे जैसी भाषाओं के लिए भी सर्वथा उपयुक्त हो, ऐसा भी नहीं है। इन भाषाओं की कई भाषिक ध्वनियों का नागरी लिपि में भी सर्वथा अभाव है। इस कारण मौजूदा रूप में नागरी लिपि में जब इन भाषाओं को लिखा जाता है तो कई समस्याएं पेश आती हैं। वर्तनी की शुद्धता को स्थिर करना मुश्किल हो जाता है। इस तरह की समस्या को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि इन स्थानीय भाषाओं में पाई जाने वाली अलग तरह की भाषिक ध्वनियों के लिए नए ध्वनि चिह्नों का निर्माण किया जाए जो नागरी लिपि के अनुकूल भी हों तथा सर्वथा अदृष्टपूर्व भी न हों ताकि आसानी से पहचाने और सीखे-सिखाए जा सकें।

इन भाषाओं की एक खासियत यह भी है कि वर्तनी के लिहाज़ से एक से दिखने वाले शब्द को उच्चारण करते समय उस में मौजूद किसी एक अक्षर को हल्का या भारी कर देने मात्र से अर्थ में

परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिए एक शब्द है - 'चक्वि'। इस के उच्चारण में 'च' के उच्चारण को हल्का और भारी कर देने से दो अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। एक का अर्थ चुभाना और दूसरे का अर्थ धोना। इस तरह की समस्या का तुरंत समाधान करना काफी मुश्किल है क्योंकि इस तरह की ध्वनियों का पेटर्न काफी जटिल है और हर बार अलग संकेत चिह्नों का प्रयोग करना स्वयं में एक समस्या बनेगी।

एक और समस्या जो मुख्य रूप से सामने आती है, वह है- ह्रस्वार्ध 'अ' जैसी एक ध्वनि जो शब्दों के मध्य या अन्त में एक स्वराघात की तरह अक्सर आती है। यह ध्वनि 'अवग्रह', विसर्ग या 'ह्' की प्रतीति कराती हुई इधर से उधर डोलती रहती है। इस को स्थिर करना भी खासा जटिल है। उदाहरण के लिए-माःग/माऽग/ माह्ग/ माअग (अर्थ - नहीं आना)।

जोःग/जोह्ग/जोऽग (अर्थ - योग/जोग का अपभ्रंश या पानी में रहने वाला एक कीट)। तरकाःट/तरकाऽट/तरकाह्ट (अर्थ - अचेत होना या पीठ के बल पड़ना।)

लूःत/लूह्त/लूऽत/लूउत (अर्थ - एक चर्म रोग)।

इस तरह के उदाहरणों में विसर्ग ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। अवग्रह आकारान्त अक्षर के बाद तो ठीक बैठता है लेकिन ऊकारान्त, ओकारान्त आदि के साथ यह संगत नहीं बैठता। अवग्रह के साथ एक और भी विडम्बना है कि आज कल के शैक्षिक पाठ्यक्रम में यह चिह्न सिखाया ही नहीं जाता। कई बच्चों को मैंने इसे 'ड' ही पढ़ते देखा है। यहां तक कि 'ङ' और 'ञ' प्रचलन से बाहर होने की ओर अग्रसर लगते हैं क्यों कि इनका स्थान अब बिन्दु ने ले लिया है। शिक्षण की स्थिति भी कुछ इस तरह की बनती जा रही है।

जब यह स्वराघात शब्द के अन्त में आता है, तो भी लिखने में मुश्किलें खड़ी करता है। जैसे-दादी के लिए शब्द है-अपः/अपअ/ अपह्। यह 'अ' या 'ह्' अर्ध उच्चारण वाला स्वराघात है। यहां विसर्ग से काम नहीं चलाया जा सकता क्योंकि इस शब्द के उच्चारण में 'अ' के ऊपर बलाघात है। वहीं शब्द के अन्त में 'अ' जोड़ना भी अटपटा सा लगता है। ऐसी कई समस्याएं अलिखित भाषाओं को लिखने के दौरान पेश आती रहेंगी और समाधान चाहेंगी। विकास क्रम के अगले पड़ावों में ये समस्याएं भी सुलझती चली जाएंगी।

बहरहाल नागरी लिपि में चड्सो भाषे और इस से मिलती जुलती भाषाओं की जिन मूल ध्वनियों का अभाव है, उन के लिए नए लिपि चिह्नों का निर्माण कर के प्राथमिक और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। इस से मोटे तौर पर हम इन भाषाओं को लिखित रूप में ला पाने में सक्षम हो जाएंगे। मुझे विश्वास है कि इस तरह से हम कम से कम जनजातीय क्षेत्रों की लगभग सभी भाषाओं की आधारभूत भाषिक ध्वनियों को लिखित रूप में लाने के लिए नागरी लिपि को सक्षम बना पाएंगे। हिमाचल की अन्य स्थानीय भाषाओं को लिखने में भी सहायता मिलेगी। इस से स्वयं नागरी लिपि की भी श्री वृद्धि होगी और वह कई विदेशज शब्दों को स्टीक ध्वनि चिह्न देने में सक्षम होगी। जैसे कि अंग्रेज़ी के pen, pane, pain आदि के उच्चारण भेद को नागरी में भी स्पष्ट अन्तर के साथ दर्शाया जा सकेगा।

चड्सो भाषे की भाषिक ध्वनियों को ध्यान में रखते हुए आगे यहां पर नागरी लिपि को पुनर्व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है जिसमें कई नई ध्वनि चिह्नों को शामिल किया गया है और साथ ही कई संयुक्त व्यंजन भी सुझाए गए हैं जिन का इन भाषाओं में बहुतायत में प्रयोग होता है। नई ध्वनियों और संयुक्त व्यंजनों का भाषिक प्रयोग भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

चड्सो भाषे वर्णमाला

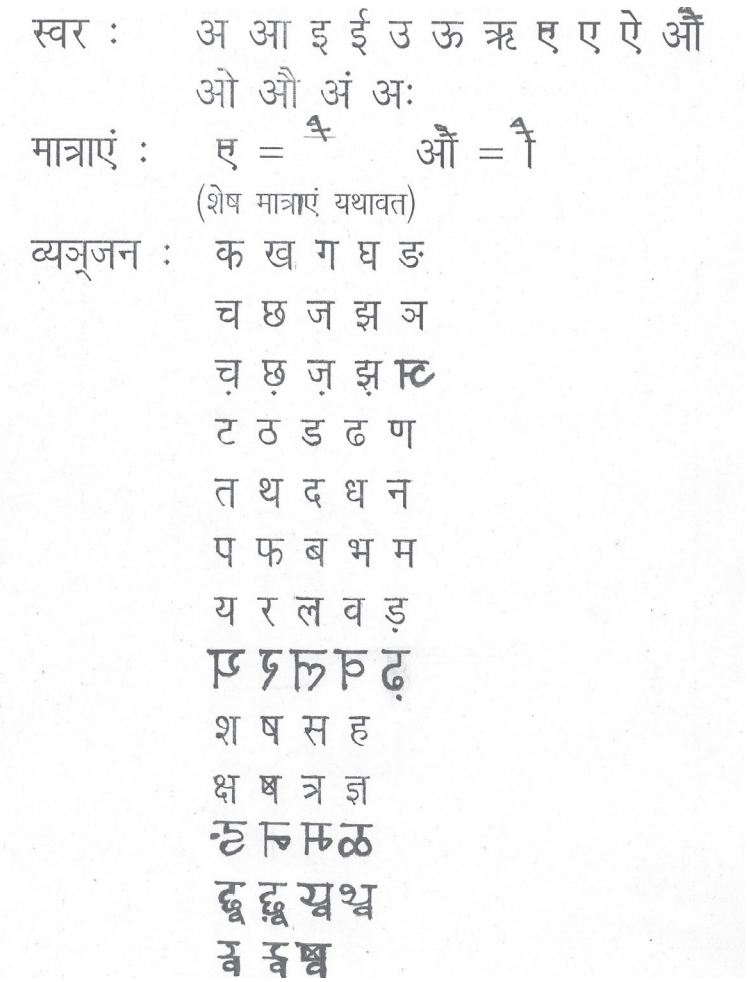

ध्यातव्य है कि लाहुल की भाषाओं में 'ङ' तथा 'ञ' अक्षरों से भी बाकायदा शब्द आरंभ होते हैं। यहां ये नासिक्य व्यंजन भर नहीं हैं।

इस प्रकार लाहुल की एक बोली चङ्सो भाषे की आवश्यकताओं के अनुरूप नागरी लिपि में कई नए ध्वनि चिह्नों का निर्माण करने और उन्हें पुनर्व्यवस्थित करने के बाद मुझे पूरा विश्वास है कि मेरा यह प्रयास व्यर्थ नहीं जाएगा। स्थानीय भाषा-भाषी विशेषकर चङ्सो भाषे के बोलने वाले लोग इसे अपनाएंगे और उन के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा और इसमें से एक नया मार्ग प्रशस्त होगा।

सुधी पाठक एवं विद्वान, दोनों वर्गों से मेरा विनम्र निवेदन रहेगा कि वे इस विषय पर अपने बहुमूल्य विचारों से मेरा आगे मार्गदर्शन करें।

Phone : 94183 50878
E. mail : satishklopa@gmail.com

किशन लाल राणा

सुनीता कटोच

अभी हाल में इटली के टोरिनो में हुए अन्तर्राष्ट्रीय मास्टर्ज़ गेम्ज़ में लाहुल-स्पीति के किशन राणा ने जेवलिन थ्रो में रजत पदक जीत कर न सिर्फ लाहुल-स्पीति का बल्कि पूरे देश का नाम ऊंचा किया है। कुल्लू में सारी भेख्ली पाठशाला में बतौर डी० पी० ई० कार्यरत श्री किशन राणा जी से सुनीता कटोच की बातचीत का अंश -

सुनीता - आपका जन्म कब और कहाँ हुआ?

किशन राणा - मेरा जन्म 26 जनवरी, 1969 ई० को लाहुल-स्पीति के एक छोटे से गाँव दन्दक, डाकघर मूरिंग में हुआ।

सुनीता - आपकी प्रारम्भिक व उच्च शिक्षा कहाँ पर हुई?

किशन राणा - मेरी प्राथमिक से माध्यमिक तक की शिक्षा मूरिंग पाठशाला से हुई। उच्च शिक्षा के लिए कुछ महीने मैं उच्च पाठशाला जहाल्मा गया फिर उसके पश्चात राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला सैंज से आगे की पढाई की। स्नातक के दो साल मैंने कुल्लू कॉलेज से किये व खेलों में रूचि के कारण मंडी कॉलेज के प्रोफेसर महोदय ने अंतिम वर्ष मेरा दाखिला मंडी कॉलेज में करा दिया। उसके पश्चात स्नातकोत्तर की पढ़ाई पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से की। एन. आइ. एस. क्रिकेट में भारतीय खेल प्राधिकरण के गुजरात से स्वर्ण पदक हासिल किया।

सुनीता - क्या आपने पाठशाला व विश्वविद्यालय स्तर पर किसी खेल में भाग लिया?

किशन राणा - हाई स्कूल स्तर पर खो-खो व कबड्डी में हिस्सा लिया करते थे कॉलेज में आने के बाद क्रिकेट खेलना शुरू किया। इसी बीच क्रिकेट में कुल्लू व मण्डी से भाग लिया और उत्तरी अन्तर -विश्व विद्यालय मैच में हिमाचल विश्व विद्यालय की ओर से खेलने का मौका मिला। कोच न होने के बावजूद मुझे 1995-96 में रणजी ट्राफी खेलने का अवसर मिला और वर्ल्ड कप खेलने आई यू०ए०इ० और होलेंड की टीम के साथ प्रेक्टिस मैच खेलने का अवसर मिला। मुझे लाहुल-स्पीति से एकमात्र रणजी खिलाड़ी बनने का सौभाग्य मिला। इस बात का मलाल हमेशा रहता है कि हमारे ज़िले से आज तक कोई और खिलाड़ी रणजी टीम का हिस्सा नहीं बन पाए।

सुनीता - क्या आपने कभी मास्टर्ज़ गेम्स में जाने के बारे में सोचा था ?

किशन राणा - 25 अगस्त को अपने घर कोली बहेड में लेंटर में पानी देते-देते मेरा पैर फिसल कर गिर गया। आस पास के लोग मुझे उठा कर कुल्लू अस्पताल ले गए। सिर पर गहरी चोट लगने के कारण मैं 45 दिन बेड रेस्ट पर रहा। मेरे गर्दन व कन्धों की मासपेशियाँ फट चुकी थी। मुझे लग रहा था कि मैं जीवन भर के लिए अपंग हो जाउंगा परन्तु फिजियो डॉक्टर अनूप की मदद से लगभग 2 साल 6 महीने बाद मैं स्वस्थ हो गया। इस बीच मन में ख्याल आया कि क्यों न मास्टरज़ गेम में हिस्सा लूँ। मैंने सिरमौर के अपने दोस्त जो सोलन में कार्यरत है उनसे बात की और उन्होंने मेरा हौंसला बढ़ाया और मैंने प्रेक्टिस शुरू कर दी।

सुनीता - राज्य व राष्ट्रीय स्तर के लिए आपका चयन किस प्रकार हुआ?

किशन राणा - भारतीय मास्टर्ज़ गेम्स के महासचिव ने मुझे ज़िला कुल्लू की कमान सौपीं थी। मैंने पूर्ण सिंह जी और सुरेश कुमार जी को लाहुल की कमान सँभालने का आग्रह किया। राज्य स्तर पर तीन स्पर्धाओं में 100 मी० दौड़, जैवलिन थ्रो और डिस्कस थ्रो में भाग लिया और तीनों में स्वर्ण पदक हासिल कर लिया और राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता फरवरी 2019 में देहरादून में हुई इसमें 100 मी० हर्डल रेस में रजत पदक, जैवलिन थ्रो में कांस्य पदक और 4'100 मी० रेस में दो रजत मिला कर कुल चार पदक जीते।

सुनीता - अंतर्राष्ट्रीय मास्टर्ज़ गेम्ज में आपने किन-किन खेलों में भाग लिया और तैयारी किस प्रकार हुई?

किशन राणा - हर खिलाड़ी का सपना होता है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने देश का प्रतिनिधित्व करे, मेरे लिए भी यह एक ख्वाब का पूरा होना जैसा था और यूरोप जाना तो एक सपना जैसा था। इटली के टोरिनो में यह प्रतियोगिताएं 26 जुलाई से 5 अगस्त तक होनी थी। इसलिए हमने 100 मी० दौड़, 100 मी० हर्डल रेस और जेवलिन थ्रो में ढालपुर खेल के मैदान में सुबह साढ़े पांच बजे से 7 बजे रोज़ाना प्रेक्टिस करना शुरू किया। हालाँकि सुविधाओं की कमी तो खली साथ ही टूटे हुए जेवलिन और लोहे का हर्डल जो स्वयं तैयार किया था के साथ प्रेक्टिस करना मुश्किल था, पर मेरा एक ही मकसद था - अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अच्छा प्रदर्शन करना।

सुनीत - इटली के टोरिनो शहर में पहुँच कर आपको कैसा लगा ?

किशन राणा - इटली एक स्वर्ग सा सुंदर शहर है जहाँ गंदगी का नामोनिशान भी नहीं ऐसा लगा मानो लाहुल पहुँच गया हूँ। एथलेटिक फील्ड में पहुंचे तो इसकी सुन्दरता को देखकर मन गदगद हो गया। शाम को 3 बजकर 5 मिनट पर मेरा इवेंट था । 12 बजे वार्मअप जोन में पहुंचा तो दूसरे देश के खिलाड़ियों को देखकर में हैरान रह गया। उनकी कद-काठी को देखकर मुझे लगा कि मै इन के सामने कहीं नहीं ठहरता हूँ। स्पर्धा शुरू हुई और 77 देशों के बीच चली प्रतियोगिता में मुझे जेवलिन थ्रो में दूसरा स्थान मिला। दूसरे दिन 100 मी० रेस में मुझे चौथा स्थान मिला और अंत में 100 मी० हर्डल रेस में भी चौथे स्थान पर संतोष करना पड़ा। हालाँकि इस बात का मलाल रहा कि थोड़ी और मेहनत जेवलिन थ्रो में की होती तो स्वर्ण पदक ले सकता था, क्योंकि स्वर्ण पदक से सिर्फ 1 मी० से छूट गया था।

सुनीता - इटली से वापिस आने पर आपको कैसा लगा?

किशन राणा - पदक जीतने के पश्चात मानो मेरी दुनिया की बदल गयी। फेसबुक के पोस्ट्स से पता लगा कि कुल्लू के अखबारों में मेरी उपलब्धियों का जिक्र रोज़ाना हो रहा है। वापिस आने पर सम्मानित करने व पुरस्कार देने का सिलसिला उप-शिक्षा निदेशक एवं शारीरिक शिक्षा संघ द्वारा शुरू किया गया जो अभी तक जारी है। अनिल सहगल जी के प्रयासों से ज़िला प्रशासन लाहुल-स्पीति द्वारा प्रशस्ति पत्र 15 अगस्त को दिया गया व इसके अलावा, ज़िला प्रशासन कुल्लू, रोटरी क्लब कुल्लू, शैक्षणिक मंच लाहुल-स्पीति, व लाहुल-स्पीति के समस्त बुद्धिजीवियों ने जगह-जगह मुझे सम्मानित किया मैं अपने लिए इटली गया था पर एक पदक ने मेरा जीवन बदल दिया। अब मेरी कोशिश यही है कि मैं लाहुल-स्पीति व अपने देश के लिए स्वर्ण पदक जीत सकूं। इसके लिए मैं हमेशा प्रयासरत रहूँगा। कहते हैं कि दुःख और सुख में सच्चे दोस्त और रिश्तेदारों की पहचान होती है जब मैं जीत कर आया तो बहुत से करीबियों को यह स्वीकार नहीं हुआ जबकि जिन्हें मैं पराया समझता था, उन्होंने मुझे सर आँखों पर बैठाया। मैं उनके सम्मान का हमेशा शुक्रगुज़ार रहूंगा।

सुनीता - कुल्लू मास्टर्ज़ गेम्ज़ एसोसिएशन का आपकी उपलब्धि पर क्या योगदान रहा?

किशन राणा - वैसे मैं कुल्लू मास्टर्ज़ गेम्ज़ का प्रधान व लाहुल-स्पीति एसोसिएशन का तकनीकी सलाहकार हूँ। मैं सिर्फ कुल्लू और लाहुल-स्पीति से नहीं बल्कि हर जगह से लोगों को इस संगठन से जोड़ना चाहता हूँ। क्योंकि आज के दौर में हमारी बाहरी गतिविधियां खासकर खेलों की तरफ रुचि कम होती जा रही है जिस कारण लोगों में बिमारी भी बढ़ रही है मैं हर व्यक्ति को इस संस्था से जोड़ना चाहता हूं ताकि लोग स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकें।

सुनीता -हमने सुना है कि आपने शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित भी कुछ किताबें लिखी हैं।

किशन राणा - जी, मैंने जमा एक से स्नातक कक्षा तक के शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की किताबें व प्रेक्टिकल बुक लिखी व तैयार की है जो कि अशोका और रितिका प्रकाशन से प्रकाशित हुई हैं। इन किताबों को हिमाचल प्रदेश व हरियाणा में विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी पाठशालाओं व कॉलेजों में पाठयक्रम के रूप में पढ़ाया जाता है।

सुनीता - इस उपलब्धि के लिए आप किसे श्रेय देना चाहते हैं?

किशन राणा - इस उपलब्धि के लिए मैं सर्वप्रथम मास्टर्ज़ गेम्ज़ फेडरेशन ऑफ इंडिया के महासचिव श्री विनोद कुमार जी, मित्र केवल राम जी, अपने पूरे परिवार, समस्त मित्र, सारी भेख्ली पाठशाला के सभी सदस्य, ज़िला लाहुल स्पीती के समस्त बुद्धिजीवी वर्ग, समस्त फेसबुक फ्रेंड्स, समस्त पत्रकार बंधुओं, ट्राइबल टुडे के सम्पादक एवं सदस्य, लाहुल-स्पीति शैक्षणिक मंच व शिक्षा से जुड़े समस्त बुद्धिजीवी और खेलों से जुड़े सभी लोगों को मैं श्रेय देता हूँ।

मैं यहां विशेष धन्यवाद देना चाहूंगा माननीय वन एवं परिवहन मंत्री श्री गोविंद जी का कि उन्होंने सोशल मीडिया के माध्यम से मुझे अपनी बधाई व आशीर्वाद दिया। मैं उनका इस हौसला अफज़ाई के लिए चिर ऋणी रहूंगा।

अंत में मैं इतना ही कहना चाहूँगा -

'चाह रखने वाले मंज़िलों को ताकते नहीं
बढ़कर थाम लिया करते हैं
जिनके हाथों में हों वक्त की कलम
अपनी तकदीर वो खुद लिख लिया करते हैं।

आयोजन और चंद पुस्तकें

अगः छेरिङ

20 अक्तूबर, 2019 को देव सदन ढालपुर कुल्लू में ''जन चेतना समिति लाहुल एवम् स्पीति'' की ओर से एक सेमिनार का आयोजन किया गया। पर्वतारोही एवम् हिमालय प्रेमी कर्नल प्रेम ने लाहुल और उस अर्थ में सम्पूर्ण हिमालय के भूगोल एवम् पर्यावरण को अति सम्वेदनशील, अतः खतरे में बताया। उन्होंने कहा कि यहाँ के मूल निवासियों ने अपने सम्यक चेतना (Right Mindfulness) का उपयोग करते हुए अपनी एक विशेष जीवन पद्धति विकसित की थी जो नैसर्गिक रूप से पर्यावरण हितैषी थी। बाहरी दुनिया की नकल करते हुए हम ने अपना वह मौलिक अंतर्ज्ञान खो दिया है। उन्होंने विकास के आधुनिक भौतिकवादी मानदंडों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता जताई। विक्रम कटोच तथा सतीश लोप्पा की प्रस्तुतियां सब से अच्छी थीं। युवा कवि एवम् पर्यटन उद्यमी विक्रम कटोच ने 'सस्टेनेबल कल्चरल एंड इको टूरिज़्म' पर पावर पॉईंट प्रेज़ेंटेशन दिया जो मूलतः अंग्रेज़ी में बनाया गया था। इस की व्याख्या हिंदी में की गई। इस में इको टूरिज़्म और सस्टेनेबल कल्चरल टूरिज़्म की अवधारणा तफसील से समझाने की कोशिश की गई। साथ में इको टूरिज़्म पर सरकार के पॉलिसी डॉक्युमेंट और स्कीम की ज़मीनी हकीकत के बीच विरोधाभास की बारीकियाँ समझाने की कोशिश की गई। श्रोता प्रभावित थे। सम्प्रेषण का लेवल पता नहीं क्या रहा, एम्बिएंस अद्भुत था। साफ और खनकती हुई आवाज़ बड़ी आकर्षक महसूस हुई।

इतिहासकार तोबदन ने अपने संक्षिप्त तथा सटीक वक्तव्य में विवाह पर की जाने वाली फिजूल खर्ची को निजी मामला बताते हुए कहा कि इस प्रवृत्ति को हम रोक नहीं सकते। कोई अपनी बहू बेटी को दस ग्राम दे या दस किलो दे, यह उसे खुद फैसला लेना है। क्यों कि उसे अपनी खर्च करने की हैसियत हम से ज़्यादा पता है। विषयांतरण करते हुए उन्होंने कहा कि किसी भी समाज की सोशो इकॉनमिक विकास में स्थानीय कारीगरों, दस्तकारों, संगीतकारों तथा छोटे कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, उन के योगदान को रेखाँकित व प्रकाशित करने की आवश्यकता है। यह काम हमारे यहाँ बहुत कम हुआ है।

बौद्ध दर्शन के वरिष्ठ विद्वान डॉ टशी पल्जोर ने स्थानीय लेखकों से अपील की, कि लाहुल में बौद्ध विद्याओं के संरक्षण में योगदान देने वाले योगियों, विद्वानों, कलाकारों, तथा शिल्पकारों को चिन्हित कर उन के काम का डॉक्युमेंटेशन करने की ज़रूरत है। इस संदर्भ में उन्होंने सुमनम के पोन नवंग योन्तन, नवंग मुरुग, तिनन के पोन तमडिन, गेमुर के विद्वान ठा. मंगल चंद, जिस्पा के अम्चि सुंदर सिंह, केलंग के लामा दोम्बा आदि शख्सियतों के नाम खास तौर पर लिए।

स्पीति के एकमात्र वक्ता श्री पद्मा नमग्यल ने कहा कि बौद्ध धर्म विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि इस का दर्शन आस्था पर नहीं तर्क पर आधारित है, इसी लिए यह पश्चिमी देशों में भी लोकप्रिय है।

लेखक व सामाजिक चिंतक सतीश लोप्पा ने विवाहोत्सवों पर फिजूल खर्ची तथा अंधानुकरण और बढ़ती अपसंस्कृति पर पर्चा पढ़ा। उन्होंने आयोजनों में अनर्गल रिचुअल्ज़ और फूहड़ नकलों के कारण आई अराजकताओं और उच्छृंखलताओं पर खूब चुटकियाँ लीं। कुछ उल्लेखनीय सुझाव दिए। मसलन, डी०जे० और बीयर पर पूरा प्रतिबंध लग जाए। लोग टोपियाँ और फूल घरों से पहन कर आएं। गिफ्ट्स, रिंग सेरेमनी, सिंदूर, जूते, मंगलसूत्र आदि गैर ज़रूरी चीज़ों को बंद किया जाय। इस सब को लागू करने के लिए उन्होंने सामुदायिक आधार पर महासभाएं गठित करने का सुझाव दिया। युवा लेखक सुनीता कटोच ने इस पर सवाल किया कि उन्हें ठीक से समझ नहीं आया कि इन महासभाओं का स्वरूप क्या होगा? जवाब आया कि यह खाप पंचायतों जैसा बिल्कुल नहीं होगा और इस के पास कोई कानूनी अथोरिटी नहीं होगी। इस की रूप रेखा कुल्लू में बुशहरी समुदाय द्वारा गठित सभा जैसी होगी लेकिन हमें हर समुदाय की अलग-अलग सभा बनानी होगी। इस पर कवि अजेय ने आशंका जताई कि चाहे कानूनी अथोरिटी न भी हो, ऐसी सभाएं अंततः खाप की तरह व्यवहार करने को बाध्य हो जाएंगी। क्योंकि हमारे समुदाय अनिवार्य रूप से धर्म और जाति पर आधारित हैं। और यह समाज में सेक्टेरियन अलगाव पैदा करेंगीं।

भारतीय रेवेन्यू सेवा के पूर्व कमिशनर श्री सुंदर ठाकुर ने आयोजकों को सुझाव दिया कि इस पूरे ईवेंट का डॉक्युमेंटेशन होना चाहिए ताकि इसे आने वाली जेनेरेशंज़ को हस्तांतरित किया जा सके साथ में कहा कि ऐसे आयोजनों में छात्रों और युवाओं की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

श्री शाम सिंह कपूर पूर्व मुख्य सचिव जम्मू व काश्मीर ने अपने कॉलेज के दिनों को याद करते हुए कहा कि पढ़ाई के हर विषय में बाकियों से बेहतर होते हुए भी कई बार वे पहचान के संकट का अनुभव करते थे और कभी-कभी हीनता बोध का शिकार हो जाते थे।

यह सामाजिक पिछड़ेपन के कारण था। और आज यहाँ इस सभा में उन्हें गहराई से यह अहसास हुआ है कि हमारा समुदाय साँस्कृतिक रूप से घबराया हुआ महसूस कर रहा है। (Our community is feeling culturally threatened) यह भी कहा कि किसी समाज की उन्नति में महिलाओं की शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। और उन्होंने बताया कि छठे सातवें दशक में महिला शिक्षा के पक्ष में आवाज़ उठाना अपने घर से ही शुरू की थी। यह एक शानदार, स्पष्ट, प्रासंगिक, गम्भीर वक्तव्य था, जो कि सुग्राह्य तथा अति कर्णप्रिय था और एक दम एक्स्टेम्पोर था ।

सेवानिवृत्त अधिशासी अभियंता श्री बी.एस.कपूर ने कहा कि हमें अपने वैवाहिक अनुष्ठानों में यदि मुख्यधारा की संस्कृति की नकल करनी ही है (जैसे उबटन, मेंहदी, जूते, अंगूठी, सेहरा, मुंह दिखाई, वेदी, मंडप, जयमाला आदि) तो उन रिचुअल्ज़ के वास्तविक आशय को समझकर पूरी तरह उन्हें निभाएं। बाहरी सभ्यताओं की आधी-अधूरी परंपराओं को अपनाकर हम अपनी संस्कृति को हास्यस्पद बना रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि श्रोताओं में महिला प्रतिभागिता अच्छी थी लेकिन वक्ताओं में कोई महिला नहीं थी। श्रोताओं के रूप में भी वे संकोची ही दिखीं। मन में बहुत सारी बातें होते हुए भी चर्चा में सीधे हिस्सा लेने से कतराती रहीं। बहुत आग्रह करने पर तथा उकसाने पर केवल दो महिलाओं ने बोलने की हिम्मत की। और निहायत ही ज़रूरी मुद्दे उठाए। सुनीता कटोच ने कहा कि हम एक तरफ सांस्कृतिक संकट की बात भी कर रहे हैं और दूसरी ओर तीन दिन के पारम्परिक विवाहोत्सव को पश्चिमी ढर्रे पर एक दिन में समेटने की बात भी कर रहे हैं। यह असंगत है। दूसरी बात यह कि लाहुल के बाहर कुल्लू में जो विवाह सम्पन्न होते हैं फिजूलखर्ची का सिलसिला वहीं से शुरू होता है, और लाहुल में रहने वाले बंधुओं को सोशल प्रेशर में इसे अपनाना पड़ता है। यह थोड़ा अटपटा लगा कि महिलाएं एक साईड में ग्रुप बना कर बैठीं थीं (अथवा उन्हें उस तरह से बिठा दिया गया था ?) जब कि आज कल सभाओं में महिला पुरुष मिल जुल कर बैठा करते हैं और महिलाएं चर्चा में बराबर हस्तक्षेप भी करती हैं।

श्री जी०सी० गेलोंग सेवानिवृत्त जी. एम. जेनेरल इंश्योरेंस कार्पोरेशन ऑफ इंडिया ने कहा कि अभी तक बुनन घाटी के अंदर होने वाले विवाहोत्सवो में अंधानुकरण एक गम्भीर समस्या नहीं है। लेकिन यदि वर या वधु में से एक किसी दूसरी कम्युनिटी का हो, या आयोजन स्थल ज़िले या प्रदेश से बाहर हो तो ये अंधानुकरण का अवांछित तत्व न चाहते हुए भी आ जाता है। क्योंकि शादियाँ अब केवल समुदायों के भीतर नहीं होतीं। यह एक महत्वपूर्ण बिंदु था जिस की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। निश्चित रूप से, यह अंतर्प्रांतीय, अंतर्जातीय, अंतर्सामुदायिक, अंतर्राष्ट्रीय विवाह सम्बंधो का युग है, भविष्य में यह और भी बढ़ेगा, अतः हमें मसले पर इस दृष्टि से विचार करना चाहिए ।

चूंकि समय कम था और हम बहस से भागने वाली कम्युनिटी हैं, इस से आगे बहस न हो पाई। थोड़े से लोग कुछ अनुत्तरित सवाल लेकर घर गए। कुछ अन्य लोग लाहुल-स्पीति की संस्कृति के बारे बहुत सारी ज़रूरी सूचनाएं ले कर गए। अधिकतर अपना नोस्टेलजिया जी कर, और आयोजक संतुष्ट हो कर।

आयोजन के आरंभ में कॉलेज के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। मध्य में मशहूर गायक एवम् बाँसुरी वादक रामदेव ने कुछ नायाब क्लासिकल कम्पोज़िशन सुनाए कुछ लोक धुनें भी सुनाईं। ढोलक पर श्री ओम प्रकाश ने अच्छी संगत की। स्तरीय लोक संगीत को श्रोताओं ने भाव विभोर हो कर सुना। कवि शेर सिंह मेरुपा ने आधुनिक विवाह रीतियों पर खूबसूरत व्यंग्य कविता सुनाई। स्पोर्ट्स के क्षेत्र में निरंतर नाम कमा रहे किशन राणा को सम्मानित किया गया ।

अंत में ''हिमधरा'' संगठन की ओर से सुब्रत कुमार साहू द्वारा निर्मित एक वृत्त चित्र का ट्रैलर दिखाया गया ''पीर पर्वत सी हो गई है Mountain Agonised**। हाईडल प्रोजेक्ट्स के कुप्रभावों पर बना यह शो काफी प्रासंगिक लगा। इस ट्रेलर ने हमें चेताया कि हमारी नाजुक और संवेदनशील भौगोलिक तथा साँस्कृतिक इकोसिस्टम को असली खतरा किस चीज़ से है और हमारी प्राथमिकताएं किस तरफ होनी चाहिएं। इस उपक्रम के लिए ''हिमधरा'' धन्यवाद का पात्र है ।

सेमिनार के अध्यक्ष एवम मुख्य अतिथि मास्टर छाया राम ने कुँह, योर, हाल्डा आदि तीज त्यौहारों के परित्यक्त रिचुलल्ज़ पर जो कुछ याद था बोला। कुठ मार्केटिंग सोसाईटी (जिस के वे फाऊंडर मेंबर्स मे से एक थे) की स्थापना पर अपने महत्वपूर्ण संस्मरण साँझा किए जो कि दर्ज किए जाने योग्य था। उन्होंने इस संदर्भ में लोट गाँव के श्री सोम देव साहनी, रांग्बे के महाशे पंची राम, केलंग के सेठ फुंजू, कारदंग के मास्टर बलवंत तथा तिनन से फुंचोग डुग्या खलेपा जी के योगदान को याद किया ।

ऐसे गम्भीर आयोजनों के लिए दो चार छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। एक तो संगोष्ठी का विषय यदि एक ही रखा जाए, तो फोकस्ड चर्चा हो सकती है। विविध विषयों पर एक दिन में चर्चा कर पाना असंभव है। विषयांतरण से एकाग्रता भंग हो जाती है। दूसरे, तय शेड्यूल से बाहर के वक्ताओं को सेमिनार के बीच में मंच पर आमंत्रित नहीं करना चाहिए। इस से क्या होता है कि ये लोग पूर्व वक्ताओं पर टिप्पणियां करना शुरू कर देते हैं जब कि ऐसी टिप्पणियों का एकाधिकार अध्यक्ष के पास होता है। अब अपनी बारी आने पर अध्यक्ष उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति तो नहीं कर सकता। इस तरह अध्यक्ष को उस का स्पेस नहीं मिल पाता, जो कि सेमिनार के एथिक्स के विरुद्ध है और अवाँच्छनीय है। हाँ, ऐसे उत्सुक और महत्वपूर्ण वक्ताओं के लिए ओपन डिस्कशन सत्र

अथवा प्रश्न सत्र (या सुझाव सत्र) में पूरा अवसर मिलना चाहिए। और इस सत्र के लिए पर्याप्त समय बचाए रखना चाहिए। तीन, एक वक्ता के लिए 20 मिनट का समय ज़रूरत से ज़्यादा लम्बा है। हर वक्ता का पाँच मिनट घटा कर अंतिम सत्र के लिए पर्याप्त समय बचाया जा सकता है। चार, आयोजकों को चाहिए कि थोड़ी मेहनत करें और आयोजन से पहले ही वक्ताओं से पर्चे मँगवा कर एक बार पढ़ लें। यदि मौखिक भाषण हो तो पहले ही वक्ता के साथ विस्तृत चर्चा कर लें। कंटेंट मालूम हो तो पर्चों को तरतीब देने में आसानी होती है। और श्रोता तक बात ठीक से पहुँचती है। पाँच, निर्धारित विषय से बाहर बोलने की अनुमति बिल्कुल नहीं मिलनी चाहिए। इस से भी एकाग्रता भंग होती है। कुछ श्रोता इरिटेट भी हो जाते हैं। इस में मंच संचालक यदि बीच में विनम्रता पूर्वक वक्ता को टोक भी दे तो कोई हर्ज़ नहीं। इस से संगोष्ठियों में अनुशासन की परम्परा विकसित होती है। और भावी आयोजनों के लिए उदाहरण स्थापित हो जाता है। और अंतिम यह कि श्रोताओं की प्रतिक्रिया ही सेमिनार की सफलता का मानदंड होती है। अतः चर्चा सत्र के लिए समय रखना चाहिए और इस का संचालन सीरियसली करना चाहिए। वर्ना संगोष्ठी करने और टी वी पर प्रवचन सुनने में फर्क नहीं रह पाएगा।

बहरहाल ये अनुभव हमें बहुत कुछ सिखाते हैं। ऐसी संगोष्ठियाँ लाहुल स्पीति की अन्य संस्थाएं पहले भी करती रही हैं। ''जन चेतना समिति'' के इस सेमिनार को उसी लम्बी शृंखला की कड़ी में एक ज़रूरी आयोजन मानना चाहिए। सामाजिक बदलाव रातों रात नहीं आते। यह एक प्राकृतिक तथा सतत चलने वाली प्रक्रिया है, इसे कोई व्यक्ति ले कर नहीं आता। कोई संस्था भी जबरन नहीं ला सकती। यह प्रक्रिया अपना समय लेती है। ऋतु आए, फल होए। लेकिन ये मंथन, ये सवाल, ये सुझाव और ये आयोजन ज़रूरी हैं। ये उस बदलाव की प्रक्रिया को त्वरा देते हैं और दिशा भी। कहा जा सकता है कि कुछ कारणों से यह आयोजन खास रहा। जहाँ पूर्ववर्ती संगोष्ठियों में प्रायः शोधार्थियों, विद्वानों और छात्रों की प्रतिभागिता अधिक होती थी वहीं इस बार अधिकतर सेवानिवृत्त अफसर साहेबान की प्रतिभागिता थी। 150 के लगभग प्रतिभागी थे। लाहुल-स्पीति के साँस्कृतिक आंदोलन के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि अफसर तबके में अस्मिता के सवालों को ले कर बड़े पैमाने पर रुचि पैदा हुई है। सभी ने वक्ताओं को गम्भीरता पूर्वक सुना (डिस्कशन सत्र को छोड़ कर)। सभागार में कमाल का अनुशासन था। अंत तक किसी ने स्थान नहीं छोड़ा। भोजन की व्यवस्था अच्छी थी। और चूँकि यह इस संस्था का ऐसा पहला आयोजन था, लिहाज़ा यह उम्मीदों से बढ़ कर सफल आयोजन था। अध्यक्ष श्री टशी अंगरूप के भाषण की शैली दमदार थी। संचालक श्री नावंग तम्बा ने बड़ी संलग्नता से एंकरिंग की। श्री रणजीत क्रोफा ने धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत किया। यह एक अच्छा टीम वर्क था। जन चेतना समिति इस के लिए बधाई का पात्र है।

नोटः जो लोग किन्हीं कारणों से आयोजन में नहीं आ सके उन्होंने वाट्स एप और फेस बुक पर खूब परिचर्चा की ।

पूर्ववर्ती आयोजन- ताकि सनद रहे

''स्वंगला एर्तोग सोसाईटी'' कुल्लू की विभिन्न गतिविधियां श्री बलदेव कृष्ण घरसंगी, श्री सतीश कुमार लोप्पा, व डॉ. छिमे शाशनी की देख-रेख में 1990 दशक के आरंभ से ही लगातार चल ही रही हैं। इसी तरह ''रिन्चेन ज़ंग्पो कल्चलरल सोसाईटी'' केलंग श्री छेरिंग दोर्जे के योग्य पथ प्रदर्शन में इसी काल से सक्रिय है। इन दोनों संस्थाओं ने अनगिनत ऐसे सेमिनार करवाए हैं ।

इस के अलावा कर्नल प्रेम चंद ने 24 दिसम्बर 2006, 10 जून 2007, 28 फरवरी 2010, तथा 27 फरवरी 2011, को ''स्वंगलो सिटिज़ंज़ फोरम'' नामक संस्था के बेनर तले लगभग इन्हीं विषयों को ले कर सेमिनार आयोजित किए थे ।

29 मई 2016 को ''सेव लाहुल-स्पीति'' नामक संस्था ने जनजातीय क्षेत्रों में आदिवासी अधिकारों तथा पर्यावरण के मुद्दे पर (संदर्भः मेगा हाईडल प्रोजेक्ट्स) एक गम्भीर तथा बड़े जन सम्मेलन का आयोजन किया ।

''बौद्ध विद्या संरक्षण सभा'' जिस्पा तथा ''लोक ज्योति बौद्ध विहार'' गैमुर नामक संस्थाएं डॉ. टशी पल्जोर के दिशा निर्देश में 1980 के दशक से लगातार बौद्ध धर्म एवम् दर्शन पर प्रति वर्ष दो या तीन सेमिनार करवाती आ रही हैं।

किताबें:

'Exit One'

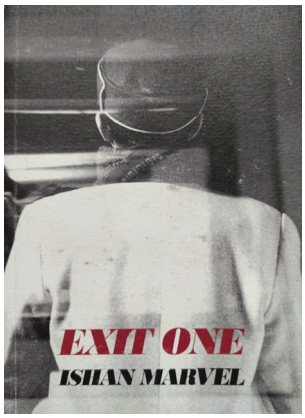

Genre : Poetry, Diary & Travellogue
Author : Ishan Marvel
Publisher : Red River 157/1 Patpadganj
New Delhi-110091
ISBN : 978-81-936130-4-7

ईशान मार्बल लाहुल-स्पीति ज़िला के मार्बल गाँव से सम्बंध रखते हैं, तथा नई पीढ़ी के उदीयमान एवम् सम्भावनाशील कवि हैं। शिक्षा, पत्रकारिता, संगीत और आधुनिक कविता में विशेष रुचि। कुछ महत्वपूर्ण एन.जी.ओ. के साथ शिक्षा पर काम तथा विश्वविख्यात Caravan पत्रिका के लिए

नियमित लेखन किया है। विश्व कविता से गहरा परिचय है। बचपन, किशोरावस्था शहरों में बीती है। इस किताब में उन के जीवन के इसी दौर के खट्टे-मीठे अनुभव गहन सम्वेदना के साथ दर्ज हैं। यह उन की पहली पुस्तक है। सम्प्रति राजकीय महाविद्यालय भरमौर (हिमाचल प्रदेश) में सहायक प्रोफेसर हैं और पहाड़ पर रह कर ही अध्ययन-लेखन का मन बनाया है। हाल ही में हिंदी में लेखन की ओर प्रवृत्त हुए हैं।

भोटी परिचय (द्वितीय संस्करण)

विधा : व्याकरण
लेखक : तोबदन
प्रकाशक : कावेरि बुक्स 4832/24 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली-110002 ISBN : 978-81-7479-227-3

प्रख्यात लेखक तोबदन मूलतः इतिहास के अध्येता हैं। भाषा में भी इन की गहन रुचि है। प्रस्तुत किताब 1990 में प्रकाशित हुई थी। इस वर्ष दूसरा संस्करण आया है। भाषा व व्याकरण के अध्येताओं के लिए बहुमूल्य पुस्तक ।

उदीयमान लाहुल का धूमिल अतीत

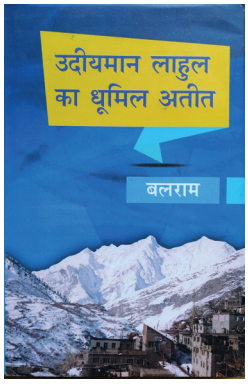

विधा : समाज/परम्पराएं
लेखक : बलराम
प्रकाशक : कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कं. ए/15-16 कमर्शियल ब्लॉक मोहन गार्डन नई दिल्ली 110059
ISBN : 13-978-93-5125258-0

बलराम लाहुल के वरिष्ठ लेखक हैं जो बहुत कम लिखते हैं। इन के आलेख सोमसी, गिरिराज, हिमप्रस्थ तथा अकादमी एवम् जन सम्पर्क विभाग के अन्य प्रकाशनों में पढ़ते रहे हैं। पुस्तकाकार में उन का लेखन शायद पहली बार आया है। उन के पास लाहुली समाज और संस्कृति को देखने का एक अलग दृष्टिकोण है।

'सिद्ध योगी अनु मेमे'

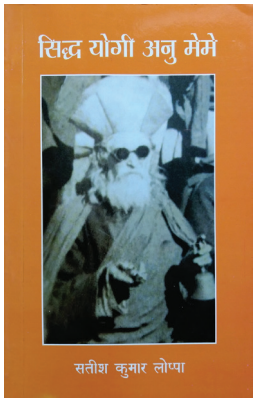

विधा : जीवनी
लेखक : सतीश कुमार लोप्पा
प्रकाशक : गुरुकुल बहुमुखी शिक्षा संस्था भुट्टी कॉलनी कुल्लू हिमाचल प्रदेश 175101
ISBN: 978-81-920584-1-2

सामाजिक चिंतक, लेखक, प्रकाशक सतीश लोप्पा की प्राचीन तंत्र विद्या तथा योग में विशेष आस्था है। केलंग गाँव के लब्ध प्रतिष्ठित योगी अनु मेमे जिन्हें पटन में 'छड़से मेमे' के नाम से जाना जाता है, के जीवन एवम् कार्यों पर यह एक शोध परक जीवनी है। यह सतीश लोप्पा की दूसरी किताब है।

'व्यक्ति वाचक'

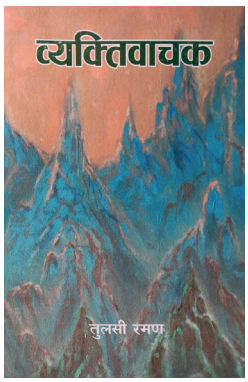

विधा : जीवनी संकलन
लेखक : तुलसी रमण
प्रकाशक : साहित्य सहकार प्रकाशन, 29/62 गली नं 11 विश्वास नगर शाहदरा दिल्ली 110032
ISBN: 978-93-81412-26-8

शिमला ज़िला के ठियोग तहसील से सम्बंध रखने वाले तुलसी रमण हिमाचल के वरिष्ठ हिंदी कवि हैं।
प्रस्तुत किताब में हिमाचल के प्रमुख संस्कृति कर्मियों के साथ लाहुल के चार लेखकों : के. अंगरूप लाहुली, छेरिंग दोर्जे, तोबदन तथा टशि पल्जोर के व्यक्तित्व एवम् रचनात्मकता पर एक-एक आलेख है।

'शहर की शराफत'

विधा : कथा साहित्य
लेखक : शेर सिंह
प्रकाशक : भावना प्रकाशन 109-ए पटपड़ गंज दिल्ली -110091
ISBN: 978-81-7667-437-1

'आस का पंछी'

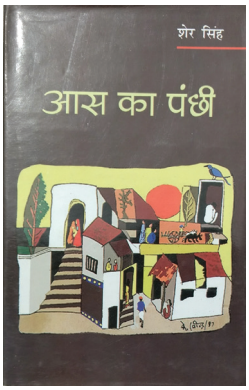

विधा : कथा साहित्य
लेखक : शेर सिंह
प्रकाशक : अयन प्रकाशन 1/20 महरौली नई दिल्ली 110030
ISBN: 978-81-7408-787-4

शेर सिंह लाहुल के यङरङ गाँव से सम्बंध रखते हैं तथा सेवा निवृत्ति के बाद शमशी, कुल्लू में रह कर पूर्णकालिक साहित्य सेवा में रत हैं। इन किताबों से पहले इन का एक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है।

सुनीता कटोच

चन्द्रभागा फ्लेवर्स - घुरे गायन एवं कविता पाठ

19 मई, 2018 को ईशान मरबल की एन.जी.ओ. 'संघ फाउंडेशन' के द्वारा 'चन्द्रभागा फ्लेवर्स' नामक इवेंट का आयोजन किया गया जिसमें गीत अतीत की टीम- श्याम लाल क्रोफा जी, हीरा लाल राश्पा जी, शेर सिंह फकीरू जी द्वारा लाहुली घुरे का गायन किया गया। शिव पार्वती विवाह प्रसंग पर लिखित घुरे का गायन श्रोताओं द्वारा खूब पसंद किया गया। इस आयोजन में केसंग की फिल्म 'फिल्मिंग लाहुल' की स्क्रीनिंग की गयी। आधे घंटे की फिल्म में करदंग गाँव के त्यौहार 'अवाबा-अमाबा' के बारे में फिल्माया गया है और रीति-रिवाज़ों की व्याख्या भी की गयी है।

आयोजन के दूसरे भाग में कविता पाठ किया गया जिसमें अजेय, यूसुफ व ईशान ने अपनी अपनी कविताएँ सुनाई ।

'इन सपनों को कौन गायेगा, लाहुल में कविता - एक चर्चा' शमशी कुल्लू

12 जनवरी 2019 को सेव लाहुल-स्पीति संस्था द्वारा संध्या पैलेस शमशी में लाहुल-स्पीति की साहित्यिक यात्रा पर एक गोष्ठी का आयोजन किया जिसका शीर्षक था 'इन सपनों को कौन गायेगा, लाहुल में कविता -एक चर्चा' इस चर्चा में लाहुल की साहित्यिक यात्रा खासकर कवि अजेय की कविता संग्रह 'इन सपनों को कौन गायेगा' पर लाहुल के बुद्धिजीवीयों व युवा कवियों ने अपनी टिपण्णी की। कार्यक्रम की शुरुआत सतीश लोप्पा जी के वक्तव्य से हुई जिसमें उन्होंने लाहुल के पुरातन समाज ने किस-किस विधा में खुद को अभिव्यक्त किया, विषय पर अपनी टिप्पणी रखी, उनका मानना था कि समाज कितना भी आदिम क्यों न हों वह अभिव्यक्ति से कभी शून्य नहीं हो सकता भले ही उनके पास सशक्त भाषा और लिपि न हों। त्यौहार, उत्सवों, मेलों के ज़रिए समाज अपनी सामूहिक अभिव्यक्ति को अंजाम देते हैं। फिर लोक -संगीत और लोक-साहित्य की ओर बढ़ते हैं, ललित कलाओं का सृजन होता है। लाहुल के पुरातन समाज में भी इस तरह की प्रवृत्तियां साफ दिखती हैं। उनके अनुसार लाहुल में प्राचीन काल से अभिव्यक्ति कई विधाओं में अभिव्यक्त होती रही है। जैसे लाहुल में लोक कथाओं, लोक नाटक, लोक गीत, घुरे/यरघीत, सुगिली, छोलणी, ग्रेग्स, ब्रो, शोन लू, छ्लुई, आधुनिक गीत का प्रचलन प्राचीनकाल से रहा है।

इसके पश्चात सुरेंद्र जी (यूसुफ) ने कवि अजेय की साहित्यिक यात्रा पर एक पॉवरपॉइंट प्रेज़ेंटेशन प्रस्तुत किया व सरला ठाकुर ने कवि अजेय के निजी व साहित्यिक जीवन पर पावरपॉइंट प्रेजेंटेशन के माध्यम से भावुक टिप्पणियाँ रखी। इस कार्यक्रम में लाहुल के चर्चित पेंटर सुरेन्द्र शौंडा जी की कुछ पेंटिंग्स भी प्रदर्शित की गयी थी। सुरेन्द्र शौंडा जी ने अजेय की कविताओं पर अपनी टिप्पणी में कहा कि उनकी कविताओं में उन्हें चित्रात्मक शैली दिखती है। उनकी कविताओं को पढ़ते-पढ़ते ज़हन में कुछ तस्वीरें, कुछ चित्र उभरने लगते हैं खास कर उनकी कविताओं 'कविता के बारे में कुछ कविताएँ', 'मैत्रेय, क्या तुम राजा की तरह आओगे?' में यह चित्रात्मक शैली खूब दिखती है।

अजेय की कविताओं पर साहित्यकार व कुल्लू कॉलेज में कार्यरत डाक्टर उरसेम लता ने कहा कि अजेय कि 'कविताओं को पढ़ना हमेशा एक अलग अनुभव रहा है, मुझे यकीन है कि अजेय की कविताओं के साथ हमारे भीतर एक ज़िरह चलती रहेगी और विशेषकर मौजूदा वक्त के सवालों के जबाब हम अजेय की कविताओं में तलाश सकते हैं 'फिर चाहे बातचीत' हो या 'आओ कविताएँ लिखें', 'यह इस देश का आखिरी छोर है'- अजेय के लगभग हर कविता में कई-कई परतें हैं जिनके भीतर अपनी बात को कह लेने की ज़िद मौजूद है, यह ज़िद वक्त के साथ हो रहे षडयंत्र के खिलाफ एक विद्रोह के रूप में अपनी पूरी शिद्दत के साथ उनकी कविताओं में मौजूद है।'

लाहुल की केसंग जो एक फिल्ममेकर हैं व अपने प्रोजेक्ट 'फिल्मिंग लाहुल' पर काम कर रही हैं द्वारा अपनी आगामी डोक्युमेंट्री के कुछ हिस्से को दिखाया गया जिसमें अजेय की कविता 'ब्यूंस की टहनियों' पर फिल्माया गया एक छोटा सा हिस्सा मौजूद था। केसंग का कहना था कि इस हिस्से को प्रदर्शित करने के पीछे एक कवि और फिल्म निर्माता के बीच के सहयोग को दर्शाना एक वजह रही यानी मूल रूप से वह दोनों की दृष्टि के बीच की समानता को दर्शाना चाहती थी।

लेखक व श्रोताओं के मध्य इंटरेक्टिव सत्र के दौरान तुलसी गौतम जी ने अजेय की कविताओं में व्यंजना को रेखांकित किया व कवि अजेय ने अपनी कविताओं से सम्बन्धित श्रोताओं के प्रश्नों के जबाब दिए व अपनी कुछ कविताओं का पाठ भी किया। एक श्रोता ने पूछा कि कविता ने गुस्से को कितना कम किया तो अजेय जी ने जबाब

देते हुए कहा कि 'अगर गुस्सा खत्म हो जाएगा तो कविताएँ खत्म हो जाएंगी और कविता को बचे रहने के लिए गुस्सा बहुत ज़रूरी है'

अंत में बलदेव घरसंगी जी ने आधुनिक कविता प्रासंगिकता के बारे में बात की, कि एक कवि किस तरह समाज के अंदर की कुंठाओं को अपनी कला व विधा के माध्यम से वो इस तरह प्रस्तुत करता है कि वो समाज के लिए प्रासंगिक हो जाता है अजेय की कविताओं में हमें यह कला देखने को मिलती है। उन्होंने आगाह किया कि घमंड या गरूर और आत्मसम्मान के मध्य स्थित एक महीन धागे के बराबर अंतर होता है और हर कवि/साहित्यकार को इस अंतर को पहचान कर आगे बढ़ते रहना चाहिए ।

उन्होंने उम्मीद जताते हुए कहा कि अजेय को अब जल्द अपनी दूसरी कविता संग्रह प्रकशित करने की तरफ अपना कदम बढ़ाना चाहिए ।

इसके अलावा कार्यक्रम में शेर सिंह, राजिन्द्र सिंह, युसूफ, शेर सिंह मेरुपा, प्रियंका, कृष्णा टशी पल्मो, ईशान मरबल, विक्रम सिंह शाशनी, राजेश कटोच, चन्दन लाल रुडिंगवा, संदीप खिंगोपा, अनीता प्रीतम, सुनीता कटोच आदि कवियों ने अपनी-अपनी कविता सुनाई।

Grams: Topseed TRADE MARK HST L No. KLS-3

Hari Singh Thakur & Co.

Seed Potato Suppliers,
Apple Growers &
Commission Agents

01902 252478 (Off)
01902 252347 (Res)
98160 22347
98160 32347
94184 12360

Manali-175131 Distt. Kullu HP

चार्ली हेब्डोज़ वरका

स्टोरीज़ एण्ड ड्रीम्ज़

कृष्णा टशि पलमो